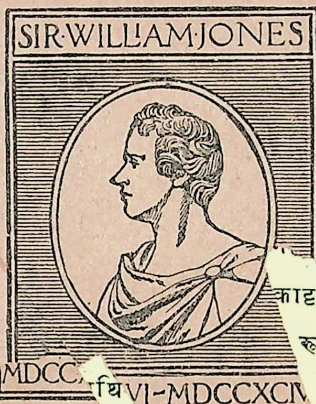
BIBLIOTHECA INDICA:
A
COLLECTION OF ORIENTAL WORKS
PUBLISHED BY THE
ASIATIC SOCIETY OF BENGAL
NEW SERIES, No. 1315.

# किरणावली।









काद्दृष्टाधीनमु
रूपवत्त्वस्येति।

साध्याव ... न्यायनयेनेदम्।
नया ... त्वे मया वाच्य
... तोऽनुद्भूत-
... नुद्भूतरूपा
... प्रतन्त्वादे-
... र्गाभ्युप-
... ाजेन
... तद-
... चिदुद्भवत्व-
... हतस्थापीति द्वितीय-

# KIRAṆĀVALI

BY

## UDAYANĀCHĀRYYA

WITH THE COMMENTARY OF VARDHAMĀNOPADHYĀYA

EDITED BY

MAHĀMAHOPĀDHYĀYA SIVA CHANDRA SĀRVVABHAUMA

FASCICULUS II.

Calcutta:
PRINTED BY UPENDRA NATHA CHAKRAVARTI, AT THE ... SAN...
No. 5, Nandakumar Chawdhury's 2nd Lane.
AND PUBLISHED BY THE
ASIATIC SOCIETY, 1 PARK STREET.
1911.



# LIST OF BOOKS FOR SALE



AT THE LIBRARY OF THE

## ASIATIC SOCIETY OF BENGAL.

No. 1, PARK STREET, CACUTTA,
AND OBTAINABLE FROM
THE SOCIETY'S AGENTS. MR. BERNARD QUARITCH,
11, GRAFTON STREET, NEW BOND STREET, LONDON, W., AND MR. OTTO HARRASSOWITZ, BOOKSELLER, LEIPZIG, GERMANY.

*Complete copies of those works marked with an asterisk * cannot be supplied.—some of the Fasciculi being out of stock.*

### BIBLIOTHECA INDICA.

*Sanskrit Series*

| | | Rs. | |
|---|---|---|---|
| •Advaita Brahma Siddhi, Fasc. 2, 4 @ /10/ each ... ... | Rs. | 1 | 4 |
| Advaitachintā Kaustubha, Fasc. 1-3 @ /10/ each ... ... ... | | 1 | 14 |
| *Agni Purāṇa, Fasc. 6-14 @ /10/ each ... ... ... | | 5 | 10 |
| Aitarēya Brāhmaṇa, Vol. I, Fasc. 1-5 ; Vol. II, Fasc. 1-5 ; Vol. III, Fasc. 1-5, Vol. IV, Fasc. 1-8 @ /10/ each ... ... ... | | 14 | 6 |
| Aitereya Lochana. ... ... ... ... ... | | 2 | 0 |
| •Aṇu Bhāṣhya, Fasc. 2-5 @ /10/ each ... ... ... | | 2 | 8 |
| Aphorisms of Sāṇḍilya, (English) Fasc. 1 @ 1/- ... ... ... | | 1 | 0 |
| Aṣtasāhasrikā Prajñāpāramitā. Fasc. 1-6 @ /10/ each ... ... | | 3 | 12 |
| *Atharvana Upanishad, Fasc 4-5 @ /10/ each ... ... ... | | 1 | 4 |
| Atmatattaviveka, Fasc. I. @ /10/ each ... ... ... ... | | 0 | 10 |
| Açvavaidyaka, Fasc. 1-5 @ /10/ each ... ... ... ... | | 3 | 2 |
| Avadāna Kalpalatā, (Sans. and Tibetan) Vol. I, Fasc. 1-7 ; Vol. II. Fasc. 1-7 @ 1/ each ... ... ... | | 15 | 0 |
| Bālam Bhaṭṭī, Vol. I, Fasc. 1-2, Vol 2, Fasc. 1 @ /10/ each ... ... | | 1 | 14 |
| Baudhāyana S'rauta Sūtra, Fasc. 1-3 Vol. II, Fasc 1-3 @ /10/ each ... | | 3 | 12 |
| *Bhāmatī, Fasc. 4-8 @ /1[illegible] each ... ... | | 3 | 2 |
| Bhātta Dīpikā Vol. [illegible] -6 ; Vol. 2, Fasc. 1, @ /10 each ... | | 4 | 6 |
| Baudhyostatr[illegible] ... ... ... ... | | 2 | 0 |
| Bṛhaddēv[illegible] 10/ each ... ... ... ... | | 2 | 8 |
| Bṛhad[illegible] 1-6 @ /10/ each ... ... ... | | 3 | 12 |
| B[illegible] [illegible]deva, Fasc. 1-5 @ /10/ each ... ... | | 3 | [illegible] |
| [illegible]sc. 1-3 ... ... ... | | 1 | 14 |
| [illegible] /10/ each ... ... ... | | 1 | 4 |
| [illegible]ooks and MSS., Fasc. 1[illegible] @ 2/ each ... | | 8 | 0 |
| [illegible] Vol I. Fasc. 1-7, [illegible] II, Fasc. 1-5, Vol. III, [illegible]c. 1-4 @ /10/ each ... ... | | 14 | 6 |
| [illegible] 6. Fasc. 1-3 @ [illegible] each ... ... | | 3 | 2 |
| [illegible]l. VII, Fasc. 1-5 [illegible] ... ... | | 3 | 2 |
| [illegible]pāramitā Part, I. [illegible] 1-14 @ /10/ each ... | | 8 | 12 |
| [illegible]maṇi, Vol. II, F[illegible] 1-25 ; Vol. III. Part I, [illegible] II. Fasc. 1-10. Vol. IV[illegible]. Fasc 1-6 @ /10/ each ... | | 36 | 14 |
| [illegible] Vol. 4. Fasc. 7-8. @ [illegible] 1/4/ each ... ... | | 2 | 8 |
| [illegible] Vol. IV, Fasc. 8-9 @ /10/ ... ... | | 1 | 4 |
| [illegible]nglish) Fasc. 1-7 @ [illegible] 1/4/ each ... ... | | 8 | 12 |
| [illegible] Āpastamba, Fasc. 1[illegible]-17 @ /10/ each ... ... | | 3 | 12 |
| [illegible] Çāṅkhāyana, Vol [illegible] I, Fasc. 1-7 ; Vol. II, Fasc. 1-4, [illegible]c. 1-4 ; Vol 4. Fa[illegible] c. 1 @ /10/ each [illegible] each ... ... | | 10 | 0 |
| [illegible]. Fasc 1-3 @ /10[illegible] 2 @ /10/ each ... ... | | 1 | 14 |
| [illegible]aumudī, Fasc 1-[illegible] Vol. I, Fasc. 1-7 @ /10/ each ... | | 1 | 4 |
| [illegible]addhati Kālasāra[illegible] Vol. II, Fasc. 1-4 @ /10/ each ... | | 4 | 6 |
| [illegible] Āchārasāra[illegible] l. I. @ /10/ each ... ... | | 3 | 2 |
| [illegible]hya Sutra, V[illegible] Fasc. 1-2 @ 1/4/ each ... ... | | 3 | 2 |
| [illegible] Vol. I[illegible]ndix) Gobhila Parisista ... ... | | 2 | 8 |
| (Appe[illegible]ya Sangraha ... ... ... | | 2 | 0 |
| [illegible]Grih[illegible] ... ... ... ... | | 0 | 10 |
| [illegible] ... ... ... ... | | 1 | 14 |
| [illegible] /10/ each ... ... ... | | 1 | 4 |
| [illegible] each ... ... ... | | 4 | 6 |
| [illegible] Fasc. 1-14 @ 1/4/ each ... ... | | 4 | 8 |
| [illegible]/ each ... ... ... | | 17 | 8 |
| [illegible] @ 1/- each ... ... ... | | 4 | 6 |
| [illegible]ch ... ... ... | | 3 | 0 |
| [illegible] 1-9 ; Vol. II, Fasc. 1-12 Vol. III, ... ... | | 6 | 14 |
| [illegible] ... ... ... | | 19 | 6 |
| [illegible] ... ... ... | | 1 | 4 |
| [illegible]ch ... ... ... | | 1 | 14 |
| [illegible] ... ... | | 9 | 0 |

-पुरुषार्थहेतुत्वादारब्धत्वं वा स्यात्। तस्य चानुभवसिद्धत्वात्। मनसस्त्वनुपलभ्यमानधर्म्मस्य स्वयमनुपलभ्यमानस्य च वैयर्थ्यादेवारम्भानुपपत्तिरिति साम्प्रतम्। रूपवत्त्वस्य प्रागेवाप्रत्यक्षत्वप्रसङ्गेनापास्तत्वात्।

---

त्वेनारब्धत्वसम्भवादप्रयोजकत्वम्। मनस्त्वनारम्भकं तदारब्धस्य शरीरेन्द्रियतद्धेतुत्वाभावेन वैयर्थ्यात्। साधनावच्छिन्नसाध्यव्यापकस्य नीरूपस्योपाधित्वाच्च। अन्यथा रूपवत्त्वेनारम्भकत्वे नीरूपस्यानारब्धत्वात् वायुरप्यनुद्भूतरूपा पृथिवी स्यात्। अतएव तमःपरमाणुर्न द्रव्यारम्भकः स्पर्शशून्यत्वात् मनोवदित्यपास्तम्। सिद्धासिद्धिभ्यां व्याघाताच्चेति। तस्माद्भोजकादृष्टाधीनमुद्भूतमिति तदभावान्न तमसि स्पर्शोद्भव इति भावः। रूपवत्त्वस्येति। तथाच तमसो द्रव्यत्वे पारमार्थिक इति भावः।

---

त्युक्तम्। यद्यपि तन्मते तमःपरमाणौ साध्याव्यापकत्वं तथापि न्यायनयेनेदम्। अन्यथेति। यदि स्पर्शत्वेनैवारम्भकत्वं त्वया वाच्यं तदा रूपवत्त्वं मया वाच्यमेवञ्च वायोर्नीरूपत्वेऽनारब्धत्वापत्तिरतो रूपवत्त्वम्। तच्च नोद्भूतमतोऽनुद्भूतरूपवच्च त्रितयान्तर्गतमेव। तत्रोष्णशीतस्पर्शरहितत्वात् तेजोजलयोरनुद्भूतरूपा पृथिवी स्यादित्यर्थः। तमः परमाणुरिति। न च विरुद्धस्पर्शावयवारब्धतन्त्वादेर्निःस्पर्शतया व्यभिचारः। त्वगिन्द्रियाप्रत्यक्षत्वप्रसङ्गेन चित्ररूपवच्चित्रस्पर्शाभ्युपगमादिति वक्ष्यते। रूपवत्त्वेन स्पर्शानुमाने योग्यानुपलब्धिबाधमुपसंहारव्याजेन निराकरोति। तस्मादिति। निमित्तभेदसंसर्गात् उद्भवानुद्भवादय इति तदभावादनुद्भूतस्पर्शस्तमसीत्ययोग्य इति नोक्तबाध इति भावः। केचिदुद्भवत्वमुत्पत्तिस्तथाच भोजकादृष्टाभावान्न तदुत्पत्तिरिति तद्रहितस्यापीति द्वितीयकल्पोपसंहार एवायमित्याहुः।





प्रत्यक्षत्वस्य चानुभवसिद्धत्वादित्येतत्सर्व्वमनुसन्धाय भगवान् मुनिराह। द्रव्यगुणकर्म्मनिष्पत्तिवैधर्म्म्याद्भाभावस्तम इति। सोऽपि कथ मालोक मन्तरेण प्रतियोगिस्मरणा-

भाभाव स्तम इति। नीलरूपवत्तायामुक्तबाधकात्(६४) तमः काले सर्व्वैरनुभूयमान आलोकाभाव एव तम स्तत्रैव नीलाद्यारोप इति भावः। सोऽपीत्याशङ्काचतुष्टये प्रथमशङ्कायामाह। यद्ग्रह इति। ननु तेजोऽवयविग्रहेऽप्यवयवतेजोविषयसंस्कारकं तेजस्त्वस-रेणुश्च सूरालोकसंस्कार्य्यः। मैवम्। संयोगित्वेनैव वाह्यालोकस्य संस्कारकत्वात् संयोगसमवायसाधारणसाक्षात्सम्बन्धत्वापेक्षया

(६४) तमः काल इति। क्लृप्ततेजोऽभावेनैवोपपत्तौ नातिरिक्तद्रव्यकल्पनम-न्यत्र तु तदसाधारणगुणविशेषएवातिरेक्यकल्पकः। न चात्रापि तेजोऽपेक्षचक्षु-र्ग्राह्यनीलरूपविशेषएव तथा तस्य बाधितत्वात्। तदिदमुक्तं नीलरूपवत्तायामिति भावः। यत्तु नीलरूपसमवायितावच्छेदकं पृथिवीत्वं लाघवात्। अतः कथमपृथिव्यां तत्। तथाच यदि वस्तुत स्तमो नीलं स्यात् पृथिवीविशेषः स्यात्। तदनुरोधेन च वरं स्पर्शाद्यनुद्भवादि कल्पयितुमुचितं न तु द्रव्यान्तरम्। धर्मिकल्पनात इति न्यायात्। अत आवश्यकत्वादभावएव तम इति। तच्चिन्त्यम्। एवं ह्यनुष्णा-शीतस्पर्शसमवायिकारणताच्छेदकं तत्तदा नीलविशेषसमवायितावच्छेदकं पृथिवीत्व-मिति वायुरपि पृथिवीविशेषः स्यात्। तदनुरोधेन रूपाद्यनुद्भावादि कल्पयितु-मर्हम्। यदि स्पर्शविशेषसमवायिकारणतावच्छेदकं तत् तदा नीलविशेषसम-वायितावच्छेदकं तदिति तुल्यम्। गौरवमपि तुल्यमेव। तथाच वस्तुतो नील-रूपवत्त्वे द्रव्यान्तरं स्यादेव। वायुवत्। तस्मादुक्तबाधकान्नीलरूपवत्त्वमेव नास्ती-त्येव बाधकम्। साक्षादिति। साक्षात्सम्बद्धत्वमुपाधिः। संयोगजत्वं जाति-रिति लाघवमित्यर्थः। यद्यप्येवमालोकसंयोगनिरूपितचाक्षुषसाक्षात्कारनिष्ठ-

धिकरणग्रहणविरहे विधिमुखेन चाक्षुष इति चेन्न हि यद्ग्रहे यदपेक्षं चक्षुः तदभावग्रहेऽपि तदपेक्षते। एवं हि तदितरसामग्रीसाकल्यं स्यात्। तदालोका-

लघुत्वात्। तदितरेति। तद्व्याप्येत्यपि द्रष्टव्यम्। तथाच प्रतियोगि-तद्व्याप्येतरयावत्प्रतियोग्युपलम्भकसमवधानं योग्यानुपलब्धिविशे-षणं सिद्ध्यति। एतच्च यद्यपि (६५) संयोगाभावग्रहे न सम्भवति

कार्य्यतावच्छेदके तेजोभिन्नत्वविशेषणप्रवेशात् तथापि गौरवम्। तथापि तेजसि तेजोव्यञ्जकत्वे तदभावग्रहेऽपि प्रतियोग्युपलम्भकत्वेन तदपेक्षा स्यादेव। तत्र मूलोक्तविरोध इति तद्गौरवं प्रामाणिकमिति भावः। रूपादौ तु स्वाश्रय-संयोगित्वेन तथात्वम्। स्वाश्रयव्यापिसाक्षात्सम्बन्धित्वेन तथात्वं वाच्यमिति। तद्व्याप्येत्यपीति। अन्यथा घटेतरस्य घटोपलम्भकस्य घटेन्द्रियसन्निकर्षस्यैवा भावयोग्यानुपलम्भासम्भवात् घटाभावप्रत्यक्षता न स्यादिति भावः।

(६५) यद्यपीति। न च संयोगग्रहे संयोगी न हेतुः किन्तु तद्गौरितीति वाच्यम्। संयुक्तसमवायस्य तद्धेतुत्वे तद्घटकतया संयोगिनोऽपि तथात्वात्।

ननु प्रतियोगिव्याप्यपदेन प्रतियोग्यसाधारणोपलम्भकोऽवश्यं विवक्षणीयः संयोगी च संयोगासाधारणोपलम्भक इति नोक्तानुपलब्ध्यसम्भवः। तदविव-क्षायां तु तदुभयभिन्नप्रतियोग्युपलम्भप्रागभावस्याभावग्राहकत्वेन बाधापत्तेः। घटनाशक्षणेऽपि घटेन्द्रियसन्निकर्षस्य सम्भवेन व्यभिचारात् तस्यापि तद्व्याप्यत्वा भावादेवमपि तद्वारणाच्च। यदि च किञ्चित्कालावच्छिन्नस्य तद्व्यापकत्वं तदा तादृशसंयोगिनोऽपि संयोगव्याप्यत्वमिति न तत्र तदसम्भव इति चेत्। न। उक्तापेक्षया वक्ष्यमाणानुपलब्धे र्लघुतया हेतुत्वमित्यत्र तात्पर्य्यमित्येके। वस्तुत उपलम्भकपदेन उपलब्धिजनकमात्रं विवक्षितम्। प्रत्यक्षजनकमात्रं वा। नाद्यः। अनुमानाद्यसम्भवेन घटाभावाप्रत्यक्षतापत्तेः। नान्त्यः। अतीन्द्रियपिशाचाद्यन्यो-न्याभावाप्रत्यक्षतापत्तेरिति। योग्यानुपलब्धिरिति। प्रमामात्रसामग्रीयम्। तेन

संयोगोपलम्भकस्य संयोगिनोऽसत्त्वात् तथापि यानुपलब्धिः प्रतियोगिसत्त्वविरोधिनी सैव योग्यानुपलब्धिरित्यत्र तात्पर्य्यम् । ननु चाभावत्वेऽपि तमस आलोकं विना न नीलरूपारोपसम्भवो नीलतद्विशिष्टसाक्षात्कारे आलोकापेक्षस्य चक्षुषः सामर्थ्यात् । भावविशेष्यके तत्र तथेति चेत् तर्हि तमसि नीलिमप्रत्ययानुपपत्तिर्गौरवञ्च । नापि विशेषोऽस्तीति सामान्यमप्रयोजकं बाधकं विना सामान्यव्याप्तौ सङ्कोचाभावात् । आलोकं विना तमसि नीलप्रतीतेः चाक्षुषत्वात् । बाधेन सङ्कोच इति चेत् तर्हि तमो विषयकनीलसाक्षात्कारे चक्षुषो नालोकापेक्षेत्युभयवादिसिद्धम् । तथाच द्रव्यमेव तमोऽस्तु नाभाव इति । नीलं तम इति अबाधित-

---

घटाभावभ्रमस्थलेऽनुपलब्धेः प्रतियोगिसत्त्वाविरोधित्वेऽपि न दोषः । अधिकं चिन्तामणिप्रकाशे विपञ्चितम् ।

आलोकं विनेति । पूर्व्वमनुभूयमानारोपो निषिद्धः सम्प्रति अर्थ्यमाणारोपो निषिध्यत इत्यपौनरुक्त्यम् । यद्यप्येतन्न भट्टमतं तथाप्यापाततः खण्डनरीत्या स्वमतं व्यवस्थापयितुं गूढाभिसन्धेरेवमुक्तम् । साक्षात्कारे चाक्षुष इति शेषः । तत्रेति । नीलतद्विशिष्टसाक्षात्कार इत्यर्थः । तमःप्रतीति रभावविशेष्यकेति भावः । तमसीति । तमसि नीलमिति प्रतीतौ नीलिम्नो भावस्यैव विशेष्यत्वादिति ।

ननु विशेष्यसन्निकर्षाभावान्नासौ चाक्षुषी प्रतीतिरिति चेत् । अत्र परेण स्वमतावष्टम्भेनोक्तमिति केचित् । अन्ये त्वेतदस्वरसेनाह । गौरवञ्चेत्यादि ।

नापीति । भावविशेष्यकत्वं गुरु । यत्र नीलविशिष्टसाक्षात्कारत्वं तत्रालोकजन्यत्वमिति सामान्यत एव व्याप्तिरित्यर्थः । आलोकमिति । अभिसन्धिमुद्धारयति । तर्हीति । द्रव्यमेवेति । तथाच भवता भावविशेष्यकत्वेन यथा विशेष्यत्वे तथा मयापि तमोरूपद्रव्यभिन्नत्वेनालोकजन्यतावच्छेदकं विशेष्यमिति भावः । द्रव्यत्वे विनिगमकमाह । अबाधितेति । अन्यथा तद्भ्रमत्वकल्पनापत्तिरिति भावः ।

भावेऽप्यालोकापेक्षा स्यात् यद्यालोके तदपेक्षा स्यात्। नत्वेतदस्ति। प्रत्युत विरोध एव। तस्मिन् सति तदभाव एव न स्यात् किं तदपेक्षेण चक्षुषा

---

प्रतीत्यनुरोधात्। अथाभावबुद्धौ (६६) प्रतियोग्यनपेक्षणात् चक्षुषा विशेष्याभावग्रहे नीलस्मृतौ तयोरसंसर्गाग्रहात् आलोकं विनापि नीलं तम इति विशिष्टधीः सम्भवति। विशेषणज्ञानं विशेष्याभावसामग्री तयोरसंसर्गाग्रह इत्येव हि गुणक्रियाजाति-विशिष्टधीहेतुः। अतएवायोग्येऽसन्निकृष्टेऽपि विशेषणे ज्ञानोप-नीते तिक्तो गुड़ः सुरभि चन्दनमित्यादिविविष्टसाक्षाद्धीरिति चेत्। अस्त्वेवं तथापि नीलतद्विशिष्टसाक्षात्कारे आलोकोऽपि हेतुरिति तं विना स न स्यात्। विशेषसामग्री मादायैव हि सामान्य-सामग्र्या जनकत्वात् निर्विशेषस्य सामान्यस्याभावात् तिक्तो गुड़ इत्यादौ च विशेषसामग्री न विशेषणयोग्यत्वतत्सन्निकर्ष-घटिता। एतेन तमःकाले तेजोऽभाव आवश्यक इति तद्विषयैव तमःप्रतीतिः। अत चक्षुष स्तेजोऽनपेक्षाया आवश्यकत्वात्। सा च क्लृप्ताभावग्रह एवास्तु न तु कल्पनीयद्रव्यान्तरग्रहे नीलादि-धीस्त्वारोपत्वेनान्यथासिद्धेत्यपास्तम्। नीलादिबुद्धेर्बाधकं विना

---

(६६) प्रतियोग्यनपेक्षणादिति। द्रव्यत्वे तु नीलं तम इति धी रालोकं विना न स्यात् विशेष्यभानसामग्रीविरहादिति भावः। विशेषेति। आलोकघटित-विशेषसामग्रीत्यर्थः। नीलादिति। अन्यथा घटादिप्रतीतेरपि भ्रमत्वमिति तुल्य-त्वादिति भावः।

गृह्येत। दिवा च प्रतियोगिनः प्रभामण्डलस्य ग्रहण एव प्रदेशान्तरे तद्ग्रह इति न किञ्चिदनुपपन्नम्।

---

द्रव्यविषयत्वेनाभावगोचरत्वात्। अत्राहुः। (६७) नीलविशिष्टज्ञानत्वेन नालोकजन्यता नीलज्ञानविशेष्यभानसामग्रीत स्तदुत्पत्तौ विशेष्ये भानसामग्र्यन्तर्गतत्वेनालोकस्यान्यथासिद्धत्वात्। एवञ्च नीलस्मृतौ विशेष्यभानाय विशिष्टज्ञानं नालोकोऽपेच्यते। विशेष्यभानञ्चात्रालोकं विनैवेति नालोकापेक्षा। अतएव रजतसाक्षात्कारे न रजतसंयोगस्य विशेष्यभानसामग्र्यन्तर्गतत्वादिति भाषितमन्यत्र। अभावग्रहेऽपि चक्षुरालोकापेक्षमिति तदभावो न चाक्षुष इति चेत्। न। अभावग्रहेऽपि प्रतियोग्यनपेक्षणात्। अन्यथा अभावप्रत्यक्षोच्छेदः। तस्माद् यत्र यत्सत्त्वं तदनुपलब्धिविरोधि तत्र तस्याभावश्चाक्षुष इत्यन्यत्र क्लृप्तमालोकाभावेऽप्यस्तीति सोऽपि चाक्षुषः तमोद्रव्यत्वेऽप्यालोकाभावस्य चाक्षुषत्वाच्च। ममानुपलब्धिगम्यो भाव इति चेत्। न। तमोज्ञानस्यान्यत्रानुपक्षीणचक्षुर्जन्यत्वात्। अस्तु वा तमोऽप्यनुपलब्धिगम्यं न तु द्रव्यमिति संक्षेपः।

---

(६७) नीलविशिष्टज्ञानत्वेनेति। नीलविशिष्टचाक्षुषसाक्षात्कारत्वेनेत्यर्थः। विशेष्यभानञ्चेति। तथाच तमो द्रव्यत्वपक्षे विशेष्यभानायालोकापेक्षणादिति तवैव दोष इति भावः। अन्यत्रेति। प्रत्यक्षखण्डादावित्यर्थः। अतएवान्यथाख्यातिसिद्धिरिति भावः। अभावग्रह इति। तथाच बाधकाभावाद्भिन्नचाक्षुषग्रह एवालोकापेक्षेति भावः। चाक्षुष इति पक्षताभिप्रायं प्रत्यक्ष इति बोध्यम्।

तमोद्रव्यत्वेऽपीति। तन्मतेऽप्यालोकं विनैवालोकाभावप्रत्यक्षमिति भावः।

द्वितीयशङ्कामाह दिवेति। (६८) उद्भूतरूपयावत्तेजःसंसर्गाभावस्य तमस्त्वेन नक्तान्तनालोकाभावस्य तमस्त्वात् प्रतियोग्येकदेशकीर्त्तनपरमेतत्। न चाभावग्रहे प्रतियोगिधीर्न हेतुः किन्त्वभावत्वेन तद्ग्रहे प्रमेयत्वेनाभावग्रहे तदभावादिति वाच्यम्। अभावत्वेन ग्रहं विना तमो नीलमिति ज्ञानानुदयात् आलोकाभावस्य तमस्त्वात्। इदन्त्वादिना तद्ग्रहे इदं नीलमिति ज्ञानापत्तेः। न चैवं तमस्त्वेनोपस्थिते धर्म्मिणि नीलाद्यनारोपः स्यादिति वाच्यम्। दिङ्मोहवद्दोषप्राबल्यात् तदुपस्थितेरप्रतिबन्धकत्वादिति दिक्॥

---

तमोज्ञानस्येति। आलोकाभावज्ञानस्येत्यर्थः। अस्तुवेति। तथाप्यालोकाभावत्वं तमसः सिद्धमेवेति भावः।

(६८) उद्भूतरूपेति। परप्रकाशकरूपेत्यर्थः। तेन परमाणुद्व्यणुकसुवर्णसद्भावेऽपि नाव्याप्तिः। विड़ालादिनयनतेजस स्तथात्वे तद्भिन्नत्वेनापि विशेष्यम्।

नन्वेतच्छायायामवतमसे चाव्यापकं तत्रोक्तरूपतेजसः सत्त्वादिति चेत्। अन्धतमसाभिप्रायेणास्योक्तत्वादित्येके। अनभिभूतशौक्लरताद्दशतेजःसंसर्गाभावः तमश्छायादिस्थले बाह्यालोकसम्बलनेऽपि तस्य तथात्वादित्यन्ये। वस्तुत आलोकाजन्यनीलविशिष्ट चाक्षुषधीविषयतावच्छेदकावच्छिन्नाभावसमुदायत्वं त्रितयसाधारणम्। अवच्छेदकस्य तत्तद्भावत्वमेव। उक्तरूपेणानुगमः। क्वचित् सामग्रीविरहात् तदनारोपेऽपि नाव्याप्तिरिति वदन्ति। अभावग्रह इति। अभावमात्रग्रह इत्यर्थः। अत्रच तमस्त्वेनैव तद्ग्रह इति न तदपेक्षेत्यभिप्रायः। नीलाद्यनारोप इति। विशेषदर्शनसत्त्वादिति भावः। दिङ्मोहेति। ननु साक्षात्कारिविशेषदर्शनाभावात्, तत्र तथा प्रकृते तु साक्षात्कारिविशेषदर्शनमिति कथं तम इति चेन्न। साक्षात्कारिविपरीतदर्शनस्य विरोधित्वात्। न चात्रारोप्यनीलत्वविपरीतसाक्षात्कारः। अतएव साक्षात्कारिशङ्खत्वदर्शनेऽपि पीतः

अन्यत्रापि न रात्रि मप्रतिसन्धायान्धकारग्रहः । रात्रिज्ञानञ्च दिवस मप्रतिसन्धाय । निरस्तैतद्दीपवर्त्ति-रविरश्मिजालः कालविशेषो ह्यत्र रात्रिरित्युच्यते । गिरिदरीविवरविवर्त्तिनस्तु यदि योगिनो न तिमिराव-

---

अन्यत्रापीति । यद्यप्यगणितरात्रिदिनविभागाना(६८)मालो-कज्ञानाभावेऽपि तमोनिश्चयात् न वा रात्रिज्ञाने सति दिनज्ञान-मिति नियमः रात्रेर्दिनाप्रतियोगित्वात् । न वा दिनमात्रतेज-स्तमः-प्रतियोगिरात्रितेजसामपि तमःप्रतियोगित्वान्नेदं युक्तम् । तथापि तमःप्रत्ययस्यैवालोकाभावविषयतया प्रमितस्यालोकरूप-प्रतियोगिज्ञानापेक्षत्वमित्येतत्परोऽयं ग्रन्थः । द्वीपोऽत्र भारतं वर्षम् । ननु गिरिविवरस्थानां योगिनाम् आलोकादर्शिनां कथं तमोधीरित्यत आह । गिरीति । यदि योगिनो योगासक्ताः

---

ग्रह इति भ्रम इति भावः । दोषेति । विषयरूपदोषप्राबल्यादिति भावः । नन्वेवं योगिनोऽपि नीलारोपः स्यादिति चेत् । फलबलेन तं प्रति तस्यादोषत्वादित्येके । अदृष्टविशेषो दोष इत्यन्ये । एतत्सर्वमभिसन्धायाह दिगिति ।

(६८) आलोकज्ञानाभावेऽपीति । तथाच नालोकाभावस्तम इति पराभि-मताभिप्रायोऽयमस्मन्मते तज्ज्ञानं विना तमोनिश्चयाभावादिति । तथापीति । बलादेरपि जन्मान्तरीयज्ञानमनन्यगत्या कल्पनीयमिति भावः । रविरश्मिवतो भारतोत्तरदेशस्यापि एतद्दीपान्तर्गतत्वासम्भव इत्यत आह । द्वीपोऽत्रेति । प्रति-योगिसंसृष्टेतेति । अभावधीहेत्वाहार्य्यारोपाभिप्रायेणेदम् । नक्तं दिवा यावत्ते-जसां प्रतियोगिनां क्वचिदपि संसृष्टतावुद्ध्यभावात् । प्रतियोग्येकदेशाभिप्रायेणेद मित्यप्याहुः ।

लोकिनः । तिमिरदर्शिनश्चेन्नूनं स्मृतालोका इति । अधिकरणमपि दृष्टमनुमितं श्रुतं वा । इहेदानीमन्धकार इति प्रत्ययात् । विधिमुखप्रत्ययोऽसिद्धः । नहि नञोऽप्रयोग इत्येव विधिः । प्रलयविनाशावसानादिषु व्यभिचारात् । नञर्थान्तर्भाविन वाक्यार्थे पदप्रयोग इति तु समं समाधानमन्यत्राभिनिवेशात् ।

---

कथं तिमिरावलोकिनः । तेषां योग एवासक्ततया वाह्यानासङ्गादित्यर्थः । यदि योगिनो मिथ्याज्ञानशून्याः कथं तिमिरावलोकिनः तिमिरज्ञानस्य भ्रमत्वादित्यपव्याख्यानम् । तिमिरज्ञानस्यालोकाभावविषयत्वेनाभ्रमत्वात् । नीलादिबुद्धेरेव तत्त्वात् । तस्याश्च तेषामभावात् । तृतीयशङ्कामाह । अधिकरणमपीति । अधिकरणं यदि प्रतियोगिसमवायि विवक्षितं तदा शब्दाभावोऽध्यक्षो न स्यात् । अथ यत्र प्रतियोगिसंसृष्टताबुद्धिस्तदधिकरणं तदा यथासम्भवं स्मृत्याद्युपस्थितानां भूतलादीनां विशेषणतया सुरभि चन्दनमितिवद्भानमविरुद्धम् । (७०) प्राधान्येन तु वाह्यालोकं विना भूतलादे र्भान मसिद्धमेव । वाह्यालोकं विनान्धकारवद्भूतलमिति प्रतीत्यनुदयात् । चतुर्थशङ्कामाह । विधीति ।

---

(७०) प्राधान्येनेति । विशेष्यत्वेनेत्यर्थः । भानं चाक्षुषमितिशेषः । प्रतीत्यनुदयादिति चाक्षुषप्रतीत्यनुदयादित्यर्थः ।

नन्वधिकरणे प्रतियोग्यारोपपूर्व्वकं निषेधप्रत्यक्षमिति सम्प्रदायसिद्धम् । तथाच भूतलादावधिकरणे आलोकरूपप्रतियोग्यारोपोऽवश्यं वाच्यः । स च न भूतल-

गतेः का गतिरिति चेत् । भ्रान्तिः स्वाभाविक्यां

विधिमुखत्वं भावत्वं वा निष्प्रतियोगित्वं वा निषेधाविषयधी-
विषयत्वं वा । नाद्यः प्रमात्मकग्रहस्यासिद्धेः । भ्रमरूपस्य
तस्याविरुद्धत्वात् । ग्रहमात्रस्यानैकान्तात् । नान्त्योऽसिद्धिः । उक्त-
परिशेषात् तिमिरस्याभावत्वस्थितेरित्यर्थः । न चैवं तिमिराभाव
एव तेजः किं न स्यादिति वाच्यम् । शुक्लभास्वरत्वबुद्धेरनन्यथा-
सिद्धेः । न च तत्र तदारोपः । तेजोभिन्ने तस्याप्रतीतेरिति भावः ।

का गतिरिति । आलोकाभावस्य तमस्त्वेन तमो गच्छ-
तीति धी र्न स्यात् । मूर्त्तस्यैव क्रियावत्त्वादित्यर्थः । भ्रान्तिरिति ।
क्रियावतश्चाक्षुषस्य (७१) स्पर्शवत्त्वनियम इति बाधकाद् गति-
ज्ञानं भ्रम इत्यर्थः । न चानुद्भूत स्तत्र स्पर्शः । स्पर्शसमानाधि-

विशेष्यकः । बाह्यालोकं विना तदनुपपत्तेः । नाप्यालोकविशेष्यकस्तस्य चक्षुर-
सन्निकृष्टत्वेनातथात्वादिति चेत् । नैवम् । चाक्षुषारोपस्यैवमसम्भवेऽपि मानसस्य
सम्भवात् । तदिन्द्रियजन्यारोपत्वेन तद्धेतुत्वे गौरवात् । मानसे चोपनीतस्यापि
विशेष्यत्वमविरुद्धम् । अन्यथा कविकाव्यादिमूलकज्ञानानुत्पत्तेः । बहिरिन्द्रियस्य
च न तथात्वमित्यत्र स्वभाव एव शरणम् । अतएव श्रोत्रादिनाकाशपाषाणादौ
शब्दगन्धाद्यभावप्रत्यक्षमन्यथा तत्राप्यसङ्गतेरिति वयम् ।

निषेधाविषयेति । विधिमुखप्रत्ययवेद्यत्वमित्यस्य समुदायस्य विकल्पोऽयम् ।
एवमग्रेऽपि । असिद्धेः सन्दिग्धासिद्धेः । विरुद्धत्वादिति । यद्यपि निष्प्रतियोगि-
कत्वं समवाये नास्ति तथाचानैकान्तिकत्वमेव न विरुद्धत्वं तथापि स्वाभावविरहात्मत्वं
वस्तुनः प्रतियोगित्व मित्यभिप्रेत्येदमुक्तमित्याहुः ।

(७१) चाक्षुषस्येति । मनसि व्यभिचारवारणाय । रूपादौ व्यभिचारवार-
णाय क्रियावत इति । स्पर्शसमानाधिकरणेति । न च तन्मते तमःपरमाणवादा-

गतौ आवरकद्रव्यानुविधानानुपपत्तेः। प्रभातुल्यत्वे तेजःप्रभाश्रयेषु रत्नविशेषेषु छाया दिवसे न स्यात्।

---

करणप्रत्यक्षजातेरुद्भूतस्पर्शसामानाधिकरण्यनियमात्। न चाप्रयोजकत्वं स्पर्शवद्वृत्तिप्रत्यक्षजातित्वानुपपत्तेरिति भावः।

ननु यथा रत्नप्रभा स्वाभाविकगतिशालिनी तेजस्त्वात् अथच स्वाश्रयगत्यनुविधायिनी तथा छायास्त्वित्यत आह। प्रभातुल्यत्व इति। प्रभाशब्दस्यानुभवनिराकरणार्थं प्रभायास्तेजोरूपत्वमुक्तम्। अत्रैवं छाया द्रव्यं स्यात्। प्रभायाश्च द्रव्यत्वमुभयसिद्धम्। ततश्चोभयोर्मूर्त्तत्वेन समानदेशत्वाविरोधात् प्रभाश्रयरत्ने छाया न स्यादित्यपव्याख्यानम्। विरलद्रव्ययोर्मूर्त्तयोरपि समानदेशत्वात्। आलोकसंयोगावच्छिन्ने चक्षुःसंयोगदर्शनात्। तस्मादेवं व्याख्येयम्। स्वाभाविकगत्याधारत्वे प्रभावत् छाया द्रव्यान्तरं स्यात्। तत्र छाया प्रभा वा दिने रात्रौ वा योग्यानुपलब्ध्या देशान्तरं नानुसर-

---

वुद्भूतस्पर्शोऽस्त्येव तत्र च तमस्त्वजातिसत्त्वादिष्टापादनमिति वाच्यम्। तदारब्धे स्पर्शोपलम्भापत्तेः। तदुद्भूतत्वे मानाभावाच्च।

ननु सुवर्णत्वप्रभात्वादौ व्यभिचार इति चेन्न। उद्भूतस्पर्शवत्त्वस्यापि वहिरिन्द्रियजद्रव्यप्रत्यक्षताप्रयोजकतामते तत्र प्रत्यक्षताभावादित्येके। तन्न। तन्मते तमसोऽप्रत्यक्षतया आपादकस्य परासिद्धतया तर्काद्यनुपपत्तेः। केचित्तु प्रत्यक्षजातीत्यनेन द्रव्यत्वसाक्षाद्व्याप्यजातीति बोध्यम्। परेण तमस्त्वस्याप्यङ्गीकारादित्याहुः। स्पर्शपदमनुष्णास्पर्शपरम्। न चैवमपि पित्तत्वे व्यभिचारः। नयनपित्तस्यानुद्भूतस्पर्शत्वेऽपि तदन्यस्य तस्योद्भूतस्पर्शवत्त्वादित्याहुः। वस्तुतः प्रत्यक्षपदमालोकाविषयकप्रत्यक्षविषयपरम्। सुवर्णत्वादिकञ्च न तथा। न च जातिपदं व्यर्थं उद्भूतस्पर्शाभावे व्यभिचारवारकत्वादिति।

**छाययैव तदभिभवे बहलतमे तमसि तेषामालोको न स्यात् । आलोकान्तरेण चाभिभवे छायाया अप्युद्भवो न स्यात् ।**

---

तीति निश्चिते नाशकाभावात् नाशाभावेऽवधृते द्रव्ययोः समानदेशताभ्युपगमेऽनुभवसिद्धविरोधसमाधानाय मिथोऽभिभवो वाच्यः । तत्र यदि प्रभया छायाभिभूयते तदा रत्नविशेषेषु पद्मरागादिषु छाया दिवसे न स्यात् । तथाच तदुपलब्धिविरोधः । दिवस इति छायोपलम्भनार्थं तेजोऽन्तरसत्त्वोपलक्षणम् । अन्यथान्धतमसे छाया नोपलभ्यत एवेत्यपि परो ब्रूयात् । अथ छायया रत्नप्रभाभिभवस्तेषां रत्नानामन्धतमसे आलोकः साक्षात्कारो न स्यात् । तमसीत्यालोकान्तरव्यावृत्त्यर्थमुक्तम् ।

नन्वनभिभूता प्रभा छायामभिभवति दिने तु सौरालोकेनाभिभूता न तामभिभवति । न चैवमुपर्य्यपि छायोपलम्भापत्तिस्तत्रालोकान्तरस्यैव विरोधित्वादित्यत आह । आलोकान्तरेणेति । तथा सति प्रभाभिभावकेनालोकेन छायायाः सुतरामभिभवात् छाया नोपलभ्यते इत्यर्थः ।

ननु छायायाः स्वाभाविकगतिसत्त्वेऽपि तेजःप्रभाश्रयेषु छायासम्बन्धो न विरुध्यते तेजोविशेषेणैव तस्या विरोधावधारणात् । तथा दर्शनात् । अन्यथा भावाभावत्वेऽपि छायाया अप्रतीकारात् ।

---

प्रत्यक्षजातित्वेति । निरुक्तजातित्वानुपपत्ते रित्यर्थः । विरलद्रव्ययोरित्युपलक्षणम् । कठिनयोरपि कपालघटयोरेकत्राधिकरणे भूतलादौ समानदेशत्वादित्यपि बोध्यम् ।

तेजोऽभावस्य तत्रासत्त्वात्। अथ तेजोऽन्तराभाव एव तत्र छाया तर्हि यत्तेजोजातीयस्यावरणे सति छाया तदेव तदभिभावकं न सर्व्वमिति तुल्यम्।

अत्राहुः। (७२) छाया यदि गतिमती स्यात् तेजोऽभावाविषयकबुद्ध्यविषयो न स्यात् तेजोऽभावविषयत्वनियमे च तेनैवान्यथासिद्धौ न द्रव्यान्तरकल्पना गत्यादिबुद्धेरारोपरूपाया अप्युपपत्तेः। निस्स्पर्शस्य महतः क्रियानुपपत्तेरनारम्भकत्वाच्च। अपि च प्रौढ़ालोकमध्ये सर्व्वतो घनतरावरणे सति न तमः स्यात्। तेजोऽवयवेन तत्र तमोऽवयवानां पूर्व्वमनवस्थानात्। सर्व्वतस्तेजःसङ्कुले चान्यतोऽप्यागमनस्याभावादित्यत्र तात्पर्य्यम्।

---

(७२) छाया यदीति। तेजोऽभावविषयकबुद्धिविषयो न स्यादिति कृते घटादौ व्यभिचारस्तस्यापि बुद्धिविषयत्वादिति नञ्गर्भत्वम्। बुद्धिपदं प्रत्यक्षपरम्। अन्यथा छायाभावविषयकानुमानादिबुद्ध्या द्रव्यत्ववादिनां इष्टापादनशङ्कासम्भवात्। नचैवमपीष्टापादनशङ्का। तज्ज्ञानसामग्रीसमावेशनियमेन तेजोऽभावव्यङ्ग्यत्वाभ्युपगमेन च तत्प्रत्यक्षे तेजोऽभावविषयकत्वनियमात्। यद्यपि तन्मतेऽभावस्यानुपलब्धिगम्यत्वाच्चैवम्। तथापि तदेकदेशिमतेन स्वमतावष्टम्भेन चैतदुक्तम्। न चैवं मनसि व्यभिचारः। प्रत्यक्षत्वे सति गतिमत्त्वस्यापादकत्वात्। अत्र तेजोऽभावाविषयकप्रत्यक्षविषयः स्यादित्येव लाघवादापाद्यम्। व्यर्थौ नञ्नकारौ निषेधद्वयेनापि तदर्थस्यैव पर्य्यवसानात्।

नन्वेवमपि तेजोऽभावघटविषयकसमूहालम्बनमात्रप्रत्यक्षविषयीभूय नष्टे घटे व्यभिचार इति चेत्। न। तादृशप्रत्यक्षविषयजातीयत्वस्य तादृशप्रत्यक्षविषयतायोग्यत्वस्य वापाद्यत्वात्। तस्य च तत्रापि सत्त्वात्। न चैवमपि तेजःपदं व्यर्थम्। प्रत्यक्षविषयः रूपादेः प्रागभावाभावत्वेनाभावाविषयकप्रत्यक्षस्याप्रसिद्धेरितिदिक्।

तस्मादावरकद्रव्ये गच्छति यत्र यत्र तेजसोऽसन्निधिस्तत्र तत्र छायाग्रहणादन्यदेशतानिबन्धनो गतिभ्रम इति । कथं भावधर्म्माध्यारोपोऽभाव इति चेत् । न किञ्चिदेतत् । सारूप्यतत्त्वाग्रहाविह निबन्धनं न त्वन्यत् । दृष्टश्च दुःखाभावे सुखत्वाध्यारोपः । यथा-दुःखापगमे सुखिनः संवृत्ताः स्मः । संयोगाभावे विभागत्वाभिमान इति । एतेन नीलिमाध्यारोपो

भ्रमवीजमाह । तस्मादिति । कथमिति । भावाभावयोर्विरोधिनाभावे भावधर्म्माणां गत्यादीनां नारोपः विरोधिनोः सारूप्याभावादित्यर्थः । न किञ्चिदिति । विरोधेऽप्यारोप-(७३) हेतो रवृत्तेरित्यर्थः । सारूप्येति । अनुभूयमानारोपे तिक्तो गुड़ः इत्यादौ सारूप्यज्ञानस्य हेतुत्वाभावेऽपि स्मर्य्यमाणारोपे तद्धेतुरेवेति भावः । दृष्टश्चेति । ननु दुःखाभावे सुखत्वं नारोप्यते किन्त्वात्मनि सुखम् । न वा सयोगाभावे विभागारोपोऽपितु द्रव्ये । अत्राहुः । इदानीमुत्पन्नं सुखं भारापगमादिति प्रत्ययादिदानी-

निस्पर्शस्येति । न च मूर्त्तत्वस्य क्रियाजनकत्वावच्छेदकत्वात् तस्य चात्र सत्त्वात् तदनुपपत्तिरिति वाच्यम् । निस्पर्शस्य महतो विभुत्वनियमेन तदेव न स्यादित्याशयात् । अनारम्भकत्वाञ्चेत्यत्र निस्पर्शस्येत्येव तत् नतु महत इत्यपीति बोध्यम् । द्रव्यत्व दूषणान्तरमाह । अपि चेति ।

(७३) आरोपहेतोरिति । प्रमेयत्वादिना सारूप्यस्यापि सम्भवादिति भावः । स्मर्य्यमाणारोप इति । तादृशज्ञानस्य स्मरणहेतुत्वादिति भावः । यद्यपि सारूप्य ज्ञानं विना यत्रादृष्टादिना स्मरणं तत्र व्यभिचार स्तथापि यत्र सम्भवति तदभि-

व्याख्यातः। शुक्लभास्वरविरोधित्वसारूप्येण तदारोपोपपत्तेः। न चैवं तदन्यारोपप्रसङ्गोऽपि। आरोपे सति निमित्तानुसरणात्। न तु निमित्तमस्तीत्यारोपः। अदृष्टादिकञ्चात्र नियामकमध्यवसेयम्। स्मर्य्यमाणञ्चैतद्रूपमारोप्यते रजतत्ववत्। न तु गृह्यमाणम् अतो न सहकार्य्यपेक्षदेश्यमाशङ्कनीयम्। धर्म्मिणि निरपेक्षत्वात्।

यद्येवमारोपितं रूपं न तमो भाभावस्तु तदिति

---

सुत्पन्ने सुखत्वारोपे दुःखाभावस्य तथेति तत्रैव सुखत्वारोपः। दुःखरहितावयवमिति तद्विवरणाच्च। यो दुःखाभाव एव सुखं मन्यते तन्मतेनेदमुक्तमित्यन्ये। एवमिदानीमुत्पन्नो विभाग इति प्रतीते तादृशे संयोगाभाव एव विभागत्वारोपः।

नन्वालोकं विना चाक्षुषी भ्रान्तिरपि न स्यादित्यत आह। स्मर्य्यमाणमिति। नीलरूपस्य स्मृत्युपस्थितस्य आलोकं विनापि विशेषणतया ग्रहणं स्यात्। प्राधान्येनैव तद्ग्रहे तदपेक्षणादित्यर्थः। धर्म्मिणीति। आलोकाभावग्रहे प्रतियोग्यपेक्षाया अभावादित्यर्थः।

---

प्रायेणोक्तम्। तथाच वैजात्यमिति भावः। तथेति। इदानीमुत्पन्न इत्यर्थः। सुखहेतोरभावादिति भावः। दुःखरहिता इति। तथाच दुःखाभावो यत्रोत्पन्नस्तत्रैव सुखत्वारोप इति भावः। तन्मतेनेति। वस्तुतः सुखत्वानाश्रये दुःखाभावे भावधर्म्मसुखत्वारोपादित्यर्थः। स्मृत्युपस्थितस्येति। यत्र देशान्तरे आलोकसद्भावे नीलानुभव स्तत्रानुभूयमानारोपो भवतीति ध्येयम्।

विनिगमनायां को हेतुरिति चेत्। उच्यते। एषा ताव-दनुभवस्थितिः। तमो नीलं न तु नीलिमा तम इति। न चारोपे तेन वास्तवेन नीलिम्ना तमोबुद्धिव्यपदेशौ समानार्थौ सहप्रयोगानुपपत्तेः। नीलोद्रव्योपरक्तेषु वस्त्वधर्म्मादिषु तमोबुद्धिव्यपदेशप्रसङ्गाच्च। अवश्यम्भावी च भावाभावानुभवो निरालम्बनस्य भ्रमस्यानुपपत्तेः। न च तमःप्रत्ययो बाध्यते। नीलप्रत्ययस्तु बाध्यते। इहेति प्रत्ययवत्। तस्माद् यत्र गुणक्रियारोपः तदन्धकारं न तु नीलिमेति सुष्ठूक्तं नवैवेति॥

कन्दलीकारमतमुत्थापयति। यद्येवमिति। सहेति। तमःपदेनैव नीलस्योक्तत्वात् नीलं तम इति सहप्रयोगो न स्यादित्यर्थः। किञ्च यत् क्वचिदारोपितं नीलं रूपं तमः आलोकाभावो वा। आद्ये नीलोद्रव्येति। अन्त्ये आलोकाभावस्यावश्योपजीव्यत्वात् लाघवात् तस्यैव तमस्त्वमित्युचितमित्याह। अवश्यमिति। किञ्चैवं तमःप्रतीतिरेव बाध्या स्यात्। आरोपितविषयत्वान्न चैवमित्याह। न चेति। इहेति। यथेहेति धीः समवायहेतुका तमसि तदभावेऽपि धर्म्मिस्वरूपे न बाध्यत इत्यर्थः। घटरूपग्राहकतेजःसत्त्वे सति भास्वररूपग्राहकसजातीयसमवधानवदालोकाभावः छाया। (७४) चाक्षुषज्ञानहेतुयावत्तेजः-

(७४) चाक्षुषज्ञानेति। ननु चाक्षुषज्ञानहेतोश्चक्षुष एव सत्त्वेन तदानीं

संसर्गाभावोऽन्धतमसम्। वाह्यालोकसंवलने अवतमसमित्यभिप्रेत्य उपसंहरति। तस्मादिति।

ननु तेजोज्ञानाभाव स्तम स्तत्काले तस्य सर्व्वसिद्धत्वात्। नीलं तम इति धीश्च भास्वरतेजोऽप्रकाशदोषेण स्मृतनीलिम्ना सममालोकज्ञानाभावस्यासंसर्गाग्रहात्। आलोकवद्गर्भगृहं प्रविशतः प्रथम मालोकाग्रहे नीलं तम इति प्रतीतौ तथा कल्पनात्। नीलस्मृतौ च स्मृतित्वमगृह्णतोऽनुभवभेदाग्रहात् नीलं तमोऽनुभवा-

---

यावदर्थाभावादव्याप्तिः। नचोद्भूतरूपवत्त्वं विशेषणम्। तादृशसुवर्णादिसत्त्वे तथाप्यव्याप्तेः। विषयतया तस्यापि चाक्षुषज्ञानहेतुत्वात्। न च चाक्षुषज्ञानत्वावच्छिन्नहेतुत्वं विवक्षितम्। तमःप्रत्यक्षे व्यभिचारेण उद्भूतरूपतेजसश्चाक्षुषत्वावच्छिन्ने हेतुत्वादिति चेन्न। चाक्षुषज्ञानहेत्वित्यन्तेन परप्रकाशकरूपवत्त्वस्य विवक्षितत्वात्। चक्षूरूपस्यापि व्यञ्जकत्वे चक्षुरतिरिक्तेत्यपि विशेषणं बोध्यम्। उद्भूतत्वं रूपविशेषणमेव वा बोध्यम्। न चैवं प्रलये तमः स्यादिति वाच्यम्। इष्टापत्तेः।

न च नासीत्तमो ज्योतिरित्यादि श्रुतिविरोधः। तस्या अन्यत्र तात्पर्य्यादित्येके। सूर्य्याधिकरणकालवृत्तित्वेन विशेषणमित्यन्यो वा। स्वेति। न च छायायामतिव्याप्तिः। स्वन्यूनसंख्याकबाह्यालोकसम्वलन इति विवक्षितत्वात्। छायायान्तु स्वाधिकसंख्य तत्सम्वलनमिति भावः।

ननु तादृशबाह्यालोकसंवलने सति यावत्तेजःसंसर्गाभावोऽसिद्ध एवेति यत्किञ्चित्तेजःसंवलने सति यत्किञ्चित्तेजोऽभावोऽवतमसमिति वाच्य मेवञ्च दिवा प्रकृष्टालोकेऽपि तत्सत्त्वादतिव्याप्तिः। न च तत्र बाह्यालोकस्य स्वाधिकसंख्यत्वमिति वाच्यम्। तद्दिनातिरिक्तानन्यदिनवृत्तिबाह्यालोकाभावानामधिकसंख्यत्वात्। तथासति तत्र छायापत्तेः। एतेन किञ्चित्तेजःसंवलने सम्वलिततेजोऽपेक्षन्यूनतरतादृशतेजःसंसर्गाभावोऽवतमसमिति निरस्तमिति चेत्। न। तमः-

छाययैव तदभिभवे बहलतमे तमसि तेषामालोको न स्यात् । आलोकान्तरेण चाभिभवे छायाया अप्युद्भवो न स्यात् ।

---

तीति निश्चिते नाशकाभावात् नाशाभावेऽवधृते द्रव्ययोः समानदेशताभ्युपगमेऽनुभवसिद्धविरोधसमाधानाय मिथोऽभिभवो वाच्यः। तत्र यदि प्रभया छायाभिभूयते तदा रत्नविशेषेषु पद्मरागादिषु छाया दिवसे न स्यात् । तथाच तदुपलब्धिविरोधः । दिवस इति छायोपलम्भनार्थं तेजोऽन्तरसत्त्वोपलक्षणम् । अन्यथान्धतमसे छाया नोपलभ्यत एवेत्यपि परो ब्रूयात् । अथ छायया रत्नप्रभाभिभवस्तेषां रत्नानामन्धतमसे आलोकः साक्षात्कारी न स्यात् । तमसीत्यालोकान्तरव्यावृत्त्यर्थमुक्तम् ।

नन्वनभिभूता प्रभा छायामभिभवति दिने तु सौरालोकेनाभिभूता न तामभिभवति । न चैवमुपर्य्यपि छायोपलम्भापत्तिस्तत्रालोकान्तरस्यैव विरोधित्वादित्यत आह । आलोकान्तरेणेति । तथा सति प्रभाभिभावकेनालोकेन छायायाः सुतरामभिभवात् छाया नोपलभ्यते इत्यर्थः ।

ननु छायायाः स्वाभाविकगतिसत्त्वेऽपि तेजःप्रभाश्रयेषु छायासम्बन्धो न विरुध्यते तेजोविशेषेणैव तस्या विरोधावधारणात् । तथा दर्शनात् । अन्यथा भावाभावत्वेऽपि छायाया अप्रतीकारात् ।

---

प्रत्यक्षजातित्वेति । निरुक्तजातित्वानुपपत्ते रित्यर्थः । विरलद्रव्ययोरित्युपलक्षणम् । कठिनयोरपि कपालघटयोरेकत्राधिकरणे भूतलादौ समानदेशत्वादित्यपि बोध्यम् ।

तेजोऽभावस्य तत्रासत्त्वात् । अथ तेजोऽन्तराभाव एव तत्र छाया तर्हि यत्तेजोजातीयस्यावरणे सति छाया तदेव तदभिभावकं न सर्व्वमिति तुल्यम् ।

अत्राहुः । (७२) छाया यदि गतिमती स्यात् तेजोऽभावाविषयकबुद्ध्यविषयो न स्यात् तेजोऽभावविषयत्वनियमे च तेनैवान्यथासिद्धौ न द्रव्यान्तरकल्पना गत्यादिबुद्धेरारोपरूपाया अप्युपपत्तेः । निस्पर्शस्य महतः क्रियानुपपत्तेरनारम्भकत्वाच्च । अपि च प्रौढ़ालोकमध्ये सर्व्वतो घनतरावरणे सति न तमः स्यात् । तेजोऽवयवेन तत्र तमोऽवयवानां पूर्व्वमनवस्थानात् । सर्व्वतस्तेजःसङ्कुले चान्यतोऽप्यागमनस्याभावादित्यत्र तात्पर्य्यम् ।

---

(७२) छाया यदीति । तेजोऽभावविषयकबुद्धिविषयो न स्यादिति कृते घटादौ व्यभिचारस्तस्यापि बुद्धिविषयत्वादिति नञ्गर्भत्वम् । बुद्धिपदं प्रत्यक्षपरम् । अन्यथा छायामात्रविषयकानुमानादिबुद्ध्या द्रव्यत्ववादिनां इष्टापादनशङ्कासम्भवात् । नचैवमपीष्टापादनशङ्का । तज्ज्ञानसामग्रीसमावेशनियमेन तेजोऽभावव्यङ्गत्वाभ्युपगमेन च तत्प्रत्यक्षे तेजोऽभावविषयकत्वनियमात् । यद्यपि तन्मते ऽभावस्यानुपलब्धिगम्यत्वान्नैवम् । तथापि तदेकदेशिमतेन स्वमतावष्टम्भेन चैतदुक्तम् । न चैवं मनसि व्यभिचारः । प्रत्यक्षत्वे सति गतिमत्त्वस्यापादकत्वात् । अत्र तेजोऽभावाविषयकप्रत्यक्षविषयः स्यादित्येव लाघवादापाद्यम् । व्यर्थौ नञ्नकारौ निषेधद्वयेनापि तदर्थस्यैव पर्य्यवसानात् ।

नन्वेवमपि तेजोऽभावघटविषयकसमूहालम्बनमात्रप्रत्यक्षविषयीभूय नष्टे घटे व्यभिचार इति चेत् । न । तादृशप्रत्यक्षविषयजातीयत्वस्य तादृशप्रत्यक्षविषयतायोग्यत्वस्य वापोह्यत्वात् । तस्य च तत्रापि सत्त्वात् । न चैवमपि तेजःपदं व्यर्थम् । प्रत्यक्षविषयः रूपादेः प्रागभावाभावत्वेनाभावाविषयकप्रत्यक्षस्याप्रसिद्धेरितिदिक ।

तस्मादावरकद्रव्ये गच्छति यत्र यत्र तेजसोऽसन्निधिस्तत्र तत्र छायाग्रहणादन्यदेशतानिबन्धनो गतिभ्रम इति। कथं भावधर्म्माध्यारोपोऽभाव इति चेत्। न किञ्चिदेतत्। सारूप्यतत्त्वाग्रहाविह निबन्धनं न त्वन्यत्। दृष्टश्च दुःखाभावे सुखत्वाध्यारोपः। यथा- दुःखापगमे सुखिनः संवृत्ताः स्मः। संयोगाभावे विभागत्वाभिमान इति। एतेन नीलिमाध्यारोपो

भ्रमवीजमाह। तस्मादिति। कथमिति। भावाभावयोर्विरोधिनाभावे भावधर्म्माणां गत्यादीनां नारोपः विरोधिनोः सारूप्याभावादित्यर्थः। न किञ्चिदिति। विरोधिऽप्यारोप-(७२) हेतो रचतेरित्यर्थः। सारूप्येति। अनुभूयमानारोपे तिक्तो गुड़ः इत्यादौ सारूप्यज्ञानस्य हेतुत्वाभावेऽपि स्मर्य्यमाणारोपे तद्धेतुरेवेति भावः। दृष्टश्चेति। ननु दुःखाभावे सुखत्वं नारोप्यते किन्त्वात्मनि सुखम्। न वा सयोगाभावे विभागारोपोऽपितु द्रव्ये। अत्राहुः। इदानीमुत्पन्नं सुखं भारापगमादिति प्रत्ययादिदानी-

निसर्गस्येति। न च मूर्त्तत्वस्य क्रियाजनकत्वावच्छेदकत्वात् तस्य चात्र सत्त्वात् तदनुपपत्तिरिति वाच्यम्। निसर्गस्य महतो विभुत्वनियमेन तदेव न स्यादित्याशयात्। अनारम्भकत्वाञ्चेत्यत्र निसर्गस्येत्येव तत् नतु महत इत्यपीति बोध्यम्। द्रव्यत्व दूषणान्तरमाह। अपि चेति।

(७२) आरोपहेतोरिति। प्रमेयत्वादिना सारूप्यस्यापि सम्भवादिति भावः। स्मर्य्यमाणारोप इति। तादृशज्ञानस्य स्मरणहेतुत्वादिति भावः। यद्यपि सारूप्य ज्ञानं विना यत्रादृष्टादिना स्मरणं तत्र व्यभिचारस्तथापि यत्र सम्भवति तदभि-

व्याख्यातः। शुक्लभास्वरविरोधित्वसारूप्येण तदारोपोपपत्तेः। न चैवं तदन्यारोपप्रसङ्गोऽपि। आरोपे सति निमित्तानुसरणात्। न तु निमित्तमस्तीत्यारोपः। अदृष्टादिकञ्चात्र नियामकमध्यवसेयम्। स्मर्य्यमाणञ्चैतद्रूपमारोप्यते रजतत्ववत्। न तु गृह्यमाणम् अतो न सहकार्य्यपेक्षदोषमाशङ्कनीयम्। धर्म्मिणि निरपेक्षत्वात्।

यच्चेवमारोपितं रूपं न तमो भाभावस्तु तदिति

---

मुत्पन्ने सुखत्वारोपे दुःखाभावस्य तथेति तत्रैव सुखत्वारोपः। दुःखरहितावयवमिति तद्विवरणाच्च। यो दुःखाभाव एव सुखं मन्यते तन्मतेनेदमुक्तमित्यन्ये। एवमिदानीमुत्पन्नो विभाग इति प्रतीतेः तादृशे संयोगाभाव एव विभागत्वारोपः।

नन्वालोकं विना चाक्षुषी भ्रान्तिरपि न स्यादित्यत आह। स्मर्य्यमाणमिति। नीलरूपस्य स्मृत्युपस्थितस्य आलोकं विनापि विशेषणतया ग्रहणं स्यात्। प्राधान्येनैव तद्ग्रहे तदपेक्षणादित्यर्थः। धर्म्मिणीति। आलोकाभावग्रहे प्रतियोग्यपेक्षाया अभावादित्यर्थः।

---

प्रायेणोक्तम्। तथाच वैजात्यमिति भावः। तथेति। इदानीमुत्पन्न इत्यर्थः। सुखहेतोरभावादिति भावः। दुःखरहिता इति। तथाच दुःखाभावो यत्रोत्पन्नस्तत्रैव सुखत्वारोप इति भावः। तन्मतेनेति। वस्तुतः सुखत्वानाश्रये दुःखाभावे भावधर्म्मसुखत्वारोपादित्यर्थः। स्मृतस्योपस्थितस्येति। यत्र देशान्तरे आलोकसद्भावे नीलानुभव स्तत्रानुभूयमानारोपो भवतीति ध्येयम्।

विनिगमनायां को हेतुरिति चेत्। उच्यते। एषा तावदनुभवस्थितिः। तमो नीलं न तु नीलिमा तम इति। न चारोपे तेन वास्तवेन नीलिम्ना तमोबुद्धिव्यपदेशौ समानार्थौ सहप्रयोगानुपपत्तेः। नीलीद्रव्योपरक्तेषु वस्त्रधर्म्मादिषु तमोबुद्धिव्यपदेशप्रसङ्गाच्च। अवश्यम्भावी च भावाभावानुभवो निरालम्बनस्य भ्रमस्यानुपपत्तेः। न च तमःप्रत्ययो वाध्यते। नीलप्रत्ययस्तु वाध्यते। इहेति प्रत्ययवत्। तस्माद् यत्र गुणक्रियारोपः तदन्धकारं न तु नीलिमेति सुष्ठूक्तं नवैवेति॥

---

कन्दलीकारमतमुत्थापयति। यद्येवमिति। सहेति। तमःपदेनैव नीलस्योक्तत्वात् नीलं तम इति सहप्रयोगो न स्यादित्यर्थः। किञ्च यत् क्वचिदारोपितं नीलं रूपं तमः आलोकाभावो वा। आद्ये नीलीद्रव्येति। अन्त्ये आलोकाभावस्यावश्योपजीव्यत्वात् लाघवात् तस्यैव तमस्त्वमित्युचितमित्याह। अवश्यमिति। किञ्चैवं तमःप्रतीतिरेव वाध्या स्यात्। आरोपितविषयत्वान्न चैवमित्याह। न चेति। इहेति। यथेहेति धीः समवायहेतुका तमसि तदभावेऽपि धर्म्मिस्वरूपे न वाध्यत इत्यर्थः। घटरूपग्राहकतेजःसत्त्वे सति भास्वररूपग्राहकसजातीयसमवधानवदालोकाभावः छाया। (७४) चाक्षुषज्ञानहेतुयावत्तेजः-

---

(७४) चाक्षुषज्ञानेति। ननु चाक्षुषज्ञानहेतोश्चक्षुष एव सत्त्वेन तदानीं

संसर्गाभावोऽन्धतमसम्। वाह्यालोकसंवलने अवतमसमित्यभिप्रेत्य उपसंहरति। तस्मादिति।

ननु तेजोज्ञानाभाव स्तम स्तत्काले तस्य सर्व्वसिद्धत्वात्। नीलं तम इति धीश्च भास्वरतेजोऽप्रकाशदोषेण स्मृतनीलिम्ना सममालोकज्ञानाभावस्यासंसर्गाग्रहात्। आलोकवद्गर्भगृहं प्रविशतः प्रथम मालोकाग्रहे नीलं तम इति प्रतीतौ तथा कल्पनात्। नीलस्मृतौ च स्मृतित्वमगृह्णतोऽनुभवभेदाग्रहात् नीलं तमोऽनुभवा-

---

यावद्दर्शाभावादव्याप्तिः। नचोद्भूतरूपवत्त्वं विशेषणम्। तादृशसुवर्णादिसत्त्वे तथाप्यव्याप्तेः। विषयतया तस्यापि चाक्षुषज्ञानहेतुत्वात्। न च चाक्षुषज्ञानत्वावच्छिन्नहेतुत्वं विवक्षितम्। तमःप्रत्यक्षे व्यभिचारेण उद्भूतरूपतेजसश्चाक्षुषत्वावच्छिन्ने हेतुत्वादिति चेन्न। चाक्षुषज्ञानहेत्वित्यन्तेन परप्रकाशकरूपवत्त्वस्य विवक्षितत्वात्। चक्षूरूपस्यापि व्यञ्जकत्वे चक्षुरतिरिक्तेत्यपि विशेषणं बोध्यम्। उद्भूतत्वं रूपविशेषणमेव वा बोध्यम्। न चैवं प्रलये तमः स्यादिति वाच्यम्। इष्टापत्तेः।

न च नासीत्तमो ज्योतिरित्यादि श्रुतिविरोधः। तस्या अन्यत्र तात्पर्य्यादित्येके। सूर्य्याधिकरणकालवृत्तित्वेन विशेषणमित्यन्यो वा। स्वेति। न च छायाया-मतिव्याप्तिः। स्वन्यूनसंख्याकबाह्यालोकसम्वलन इति विवक्षितत्वात्। छायायान्तु स्वाधिकसंख्य तत्सम्वलनमिति भावः।

ननु तादृशबाह्यालोकसंवलने सति यावत्तेजःसंसर्गाभावोऽसिद्ध एवेति यत्किञ्चित्तेजःसंवलने सति यत्किञ्चित्तेजोऽभावोऽवतमसमिति वाच्य मेवञ्च दिवा प्रकृष्टालोकेऽपि तत्सत्त्वादतिव्याप्तिः। न च तत्र बाह्यालोकस्य स्वाधिकसंख्यत्वमिति वाच्यम्। तद्दिनातिरिक्तानन्यदिनवृत्तिबाह्यालोकाभावानामधिकसंख्यत्वात्। तथासति तत्र छायापत्तेः। एतेन किञ्चित्तेजःसंवलने सम्वलिततेजोऽपेक्षबहुतरतादृशतेजःसंसर्गाभावोऽवतमसमिति निरस्तमिति चेत्। न। तमः-

मीतिधी स्यादाहुः । (७५) अप्रतीताविव प्रतीतिभ्रमो मन्दाना-मिति प्राभाकराः । तन्न । तमसः प्रतीतिरन्यत्रानुत्तीर्णचक्षुर्जन्य-त्वेन ज्ञानाभावाविषयत्वात् । न हि तेजोज्ञानाभावेऽधिकरण-ग्रहे नीलस्मृतावसंसर्गाग्रहे वा चक्षुरुपयोगः सम्भवति ।

अथ तमोबुद्धिर्न चाक्षुषी चक्षुर्निविड़निष्पीड़नेन तमोविरहेऽपि नीलं तम इति प्रतीतिः । न च सा भ्रमः कारणाभावात् । तेजो ज्ञानाभाव एव तम इति चेत् । न । तत्र हीदानीं किञ्चिन्न पश्यामीति धी र्नतु तमःप्रतीतिः । अन्यथा निमीलितनेत्रस्य गेहे तमोऽस्ति न वेति संशयानुपपत्तेः । गर्भगेहे च तमोधी र्भ्रमः बाधकसत्त्वादिति संक्षेपः ॥

---

सामान्यलक्षणं प्रागुक्तम् । तथाच बाह्यालोकसंवलने सति तमस्त्वमेवावतमस-लक्षणम् । न चैवमपि छायायामतिव्याप्तिः । तस्यावतमसविशेषत्वात् । अतएव न तल्लक्षणं पृथक् कृतमित्येके । अन्ये तु छायान्यत्वं विशेषणम् । छायात्वञ्चालोका-जन्यचाक्षुषारोपविषयतावच्छेदकावच्छिन्नाभावसमुदायत्वमिति भावः । आलोक-वदिति । आलोकाभावस्य तमस्त्वे तस्य तत्रासत्त्वात् तमोधी र्न स्यादिति भावः । तथेति । आलोकज्ञानाभावस्य तमस्त्वकल्पनादिति । नीलस्मृताविति । तन्मते स्मृत्यनुभवरूपज्ञानद्वयस्यैव भ्रमत्वादिति भावः ।

(७५) अप्रतीताविवेति । अननुभव एवानुभवभ्रमो मन्दानां दोषवता-मित्यर्थः । अविशिष्टज्ञान एव विशिष्टज्ञानभ्रमो मन्दानां नैयायिकानामित्यर्थ इत्यन्ये तमोविरहेऽपीति । आलोकाभावविरहेऽपीत्यर्थः । कारणाभावादिति । चक्षुषी मिलितत्वादिति भावः । अन्यथेति । आलोकज्ञानाभावस्य मनसा निश्चित-त्वेन संशयाविषयत्वादिति भावः । ज्ञानाभावस्य तमस्त्वे अहमन्धकारवानिति प्रतीतिः स्यादित्यपि बोध्यम् ।

ननु गर्भगेहे तमोधी र्न तमोविशेष्यिका तदसन्निकर्षात् । न गेहविशेष्यिका ।

गुणान् विभजते । गुणा इति । रूपादयः सप्तदश कण्ठोक्ताः सूत्रकारेण । अभ्युपगमसिद्धान्तन्यायेनान्ये सप्त सिद्धगुणभावाः । तत्र तत्र तेषां व्युत्पादनात् । अनभ्युपगमे तेषां व्युत्पादनविरोधात् । तथाच विभागसूत्रं न्यूनम् । रूपरसगन्धस्पर्शाः संख्या परिमाणानि पृथक्त्वं संयोगविभागौ परत्वापरत्वे बुद्धयः सुखदुःखे इच्छाद्वेषौ प्रयत्नश्च गुणा इति तत् । अत आहुः ।

---

कण्ठोक्ता इति । (७६) असाधारणस्वशब्देनोक्ता इत्यर्थः । कर्त्रपेक्षायामाह । सूत्रकारेणेति शेषः । अभ्युपगम इति । साक्षादसूत्रितत्वेऽपि समानतन्त्राभिहितत्वेनाभ्युपगमस्य मानत्वादित्यर्थः ।

ननु चादृष्टत्वजातियोगित्वेन धर्म्माधर्म्मौ भिन्नौ न गुणावित्यत आह । नन्विति । कार्य्येति । सुखदुःखे धर्म्माधर्म्मयोः कार्य्ये विहितनिषिद्धे क्रिये च कारणे इति न कार्य्यकारणयोरैक-

---

आलोकाविषयकचाक्षुषघटग्रहसाक्षात्कारानभ्युपगमात् । न चालोकविषयत्वमेव तस्येति वाच्यम् । प्रथममालोकाग्रहे तमोबुद्धेरुक्तत्वात् । तथा सत्यालोकाभावारोपासम्भवाच्चेत्यत आह । सङ्क्षेप इति । दोषालोकसाक्षात्काराभावेऽपि तत्संस्कृतघटग्रहसाक्षात्कारे विरोधाभावात् । यद्वा आलोकग्रहे घटग्रहे तद्वत्ताग्रहदशायां तदभावारोप इति भाव इति दिक् ।

(७६) ननूक्तास्चेत्तदा कण्ठेनैवेति विशेषणमयुक्तम् । इति तस्यान्यमर्थमाह । असाधारणेति । न भिन्नाविति । गुणत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिभिरेव विभाग इति भावः । यदनुरोधादिति । कार्य्यतावच्छेदकतया कारणतावच्छेदकतया च नादृष्टत्वजातिकल्पनमिति भावः ।

च शब्दसमुच्चिताः सन्तीति । ननु अदृष्टशब्देन धर्म्माधर्म्मयोः संक्षेपेणाभिधानं न त्वदृष्टत्वं नाम सामान्य-

---

रूप्यम् । यदनुरोधात् जातिः कल्प्यते । न वा लक्षणमप्येकमित्यर्थः ।

नन्व(७७)तीन्द्रियात्मविशेषगुणमात्रवृत्तिगुणत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिमत्त्वं लक्षणमेकमनयोरित्यत आह । व्यवस्थापकानामिति ।

ननु व्यवस्थापकं किं कारणमेकजातीयं तादृशं कार्य्यं वा । नाद्यः । मनःस्वेतदभावात् । नान्त्यः सत्तादौ तदभावात् । ज्ञान-

---

(७७) अतीन्द्रियात्मेति । अतीन्द्रियपदं सुखादिवारणाय । विशेषपदं गुणत्वव्याप्यपदञ्चात्र सम्पातायातम् । तद्व्यावर्त्तनीयस्यात्र मात्रपदेनैव व्यावर्त्तनात् । एवञ्च गुरुत्वव्यावर्त्तनायात्मपदम् । केचित्त्वात्मपदविशेषपदयोरन्यतरान्तर्भावेन लक्षणद्वयं बोध्यम् ।

व्यवस्थापकानामितीति । इदञ्च न व्यवस्थापकं भावनासाधारण्यादिति भावः । केचित्तु कार्य्यान्वयतया कारणानुमेयाव्यञ्जकव्यङ्ग्या न जातिरिति त्रयमेव व्यवस्थापकम् । तत् त्रयमपि नास्तीति फक्किकार्थः । लक्षणस्य व्यञ्जकस्य तदसम्भवो यदि सा जातिः प्रत्यक्षा स्यादिति । वस्तुतस्त्वनुगतं लक्षणं न जातिव्यवस्थापकम् । अतएव न जातावनुगतव्यञ्जकनियम इति तत्त्वम् । न च साक्षाद्व्याप्यत्वप्रक्षेपः । अतएव क्वचित्तथैव पाठ इति वाच्यम् । तद्धि धर्म्मत्वादिपुरस्कारेण ग्राह्यमदृष्टपुरस्कारेण वा । नाद्यः । गुणत्वसाक्षाद्व्याप्यत्वेन गृहीते धर्म्मत्वादावुपजीव्यविरोधात् तेनैवादृष्टत्वजात्यपवादात् । नान्त्योऽन्योन्याश्रयात् । अदृष्टस्य सिद्धावुक्तलक्षणसिद्धौ च जातिव्यवस्थितिरिति भावः ।

तदभावादिति । एकजातीयकार्य्याभावादित्यर्थः । यदि च योगिज्ञानस्य विषयजन्यत्वपक्षे सत्ताश्रयाणां सर्व्वेषां ज्ञानजनन-स्वरूपयोग्यत्वात् ज्ञानजनकतावच्छेदकत्वेन सत्तासिद्धिः तदा तत एवादृष्टसिद्धिरपीति तुल्यमित्याह । ज्ञानरूप-

मस्ति। कार्य्यकारणलक्षणानां व्यवस्थापकानामभावात्। तेन गुरुत्वद्रव्यत्वस्नेहसंस्कारधर्म्माधर्म्मशब्दा इत्युक्तं

---

रूपन्तु कार्य्यमिहास्तीति। न च व्यवस्थापकं प्रमाणं तदभावो हेतुः। धर्म्मोऽधर्म्मवृत्तिसत्तागुणत्वान्यजातिरहितः। अधर्म्मान्यत्वात् प्रयत्नवदिति विरोधिमानाच्च तदवगम इति वाच्यम्। यत्नसंस्कारान्यातीन्द्रियजन्यात्मविशेषगुणत्वेन प्रतिरोधात्। न चात्राधर्म्मत्वमुपाधिः। तत्राप्यात्मगुणत्वपक्षधर्म्मावच्छिन्नसाध्यव्यापकस्य धर्म्मेतरात्मगुणत्वस्योपाधेः सत्त्वात्।

---

न्त्विति। उभयत्रापि ज्ञानविशेषरूपकार्य्यप्रतियोगिककारणतावच्छेदकत्वसम्भवादिति वदन्ति। भोगरूपज्ञानाभिप्रायेणेदमित्यन्ये। तदभावो हेतुरिति। अदृष्टत्वं न जातिः। प्रमाणाभावादित्यर्थः।

नन्वेवमदृष्टत्वं जाति र्बाधकाभावादित्येव किं न स्यादित्यत आह। धर्म्म इति। धर्म्मत्वसत्त्वाद्बाध इत्यत उक्तम्। अधर्म्मवृत्तीति। यत्नेति। धर्म्मोऽधर्म्मवृत्तिसत्तागुणत्वान्यजातिमानिति साध्य मधर्म्मवदिति दृष्टान्तः। जीवनयोनियत्नभावनयोः व्यभिचारवारणाय यत्नसंस्कारान्येति। सुखादौ व्यभिचारवारणायातीन्द्रियेति। ईश्वरज्ञानादौ व्यभिचारवारणाय जन्येति। पार्थिवपरमाणुगन्धे व्यभिचारवारणायात्मेति। आत्ममनोयोगे व्यभिचारवारणायाह विशेषेति। निर्विकल्पकान्यविशेषणम्।

केचित्तु संस्कारपदस्य सविषयपरत्वात् न व्यभिचारः। न चैवं यत्नपदानर्थक्यम्। तस्य स्वरूपतोऽविषयकत्वात्। यद्वा ज्ञानमात्रस्यात्मधर्म्मसमवेतस्य जनको य आत्मधर्म्मः तत्परं संस्कारपदम्। तथाच सतीन्द्रियपदं द्वेषादिवारकमितिभावः।

आत्मगुणत्वेति। रूपादौ साध्याव्यापकत्वात्। पक्षधर्म्मावच्छिन्नेति। ननु धर्म्मेतरत्वमात्रमेवोपाधिरस्तु यदि च पक्षेतरत्वनिरासाय तदुपादानं तथाप्यात्म-

5078

भवंति । एवं कण्ठोक्त्या समुच्चयेन चैकतया चतुर्व्विंश-तिगुणा व्यवहर्त्तव्याः । तथाविधबुद्धिविषयतया साङ्ख्येण न तु संख्यायोगेन । यथा चैतत्तथा वक्ष्यामः ।

---

अत्राहुः । व्यवस्थापकं निश्चायकम् । तच्चात्र नाध्यक्षं नाप्यनुमानं प्रतिरुद्धत्वात् । उक्तरूपञ्च लक्षणञ्च न जातिं विनानुपपन्नमित्य-वश्योपियोपाधिनैवादृष्टपदसार्थकत्वोपपत्तौ जात्युपगमे गौरवम् ।

---

पदं व्यर्थमेव । गुणपदेनैव तन्निरासात् । एवमपि पक्षेतरतुल्यत्वापत्तेश्च । यदि च विपक्षबाधकेन साध्यव्यापकत्वात् तादृशस्याप्युपाधित्वं तदा पक्षेतरतुल्यमिति चेत् । नैवम् । विपक्षबाधकेन पक्षेतरस्योपाधित्वसम्भवे तत्तुल्यस्याप्यस्य तथात्वे विरोधाभावात् । न च व्यर्थविशेषणत्वादेव न तथात्वमिति वाच्यम् । व्यापके व्यर्थविशेषणत्वाभावेन तत्र साध्यव्यापकताग्रहे बाधकाभावात् । अतएव सामान्य-व्याप्तोपाधिपक्षे आर्द्रेन्धनप्रभववह्निमत्त्वादेरपि धूमव्यापकत्वग्रहः । स तेन व्यभि-चारोऽत्र परे व्याप्यकोटिप्रवेशात् व्यर्थत्वमिति वाच्यम् । तद्व्यभिचारित्वस्य तत्र लिङ्गत्वात् तस्य च विशिष्टाभावगर्भत्वेन तदसम्भवात् । अन्यथा समव्याप्तेऽप्यगते-रिति । यत्तु समव्याप्तत्वार्थं तदुपादानमिति तन्न । उपाधिमत्यधर्म्मे साध्यासत्त्वेन व्यभिचारात् । आत्मपदं क्वाचित्कमफलमेवेत्याहुः । केचित्तु सुखत्वसाक्षात्कारत्व-नियतकार्य्यतानिरूपितकारणतावच्छेदकजातिशून्यत्वे तात्पर्य्यम् । न चैवमपि पक्षेतरता । तादृशजातिमतः स्वर्गिशरीरस्यापि व्यावर्त्तनात् । अतएव न पक्षधर्म्मावच्छिन्नानुपयोगः । तत्रैव साध्याव्यापकत्ववारकत्वात् । न चैवं पक्षधर्म्मे आत्मेति विशेषणं व्यर्थम् । गुणपदस्य समवेतपरत्वादिति भाव इत्याहुः । प्रतिरुद्धत्वादित्यापाततः कार्य्यकारणभावानुगमो भावेऽप्रयोजकत्वादिति बोध्यम् ।

न जातिमिति । नादृष्टत्वजातिमित्यर्थः । उक्तलक्षणस्य जातिव्यवस्थापकत्वे

कर्म्माणि विभजते। उत्क्षेपणेति। तत्रापि पञ्चैवेति स्पष्टार्थम्। विभागवचनादेव पञ्चत्वसिद्धेः। आधिक्यमाशङ्क्याह। गमनग्रहणादिति। कर्म्मपदार्थे चैतद्व्युत्पादनीयम्।

सामान्यं विभजते सामान्यमिति। समानानां भावः स्वाभाविकोऽनागन्तुको धर्म्मः सामान्यमित्यर्थः।

---

समानानां भाव उपाधिरपीत्यत उक्तं स्वाभाविक इति। सोऽपि यदि स्वभावजन्यस्तर्ह्यसिद्धिः स्वभावाश्रितस्योपाधिरपीत्यत उक्तम् अनागन्तुक इति। (७८) साक्षात् समवेत इत्यर्थः।

---

दोषस्योक्तत्वादिति भावः। नन्वदृष्टपदशक्यतावच्छेदकत्वेनादृष्टत्वसिद्धिरित्यत आह। अवश्योपेयेति। क्लृप्तेनैवोपपत्तावक्लृप्तकल्पने गौरवमिति भावः।

अत्रेदं चिन्त्यम्। जलपदशक्यतावच्छेदकत्वेनानुगतधर्म्मसिद्धौ बाधकाभावात् तज्जातित्वमित्यग्रिमग्रन्थविरोधात्। तत्रापि क्लृप्तोपाधिनैवोपपत्तौ जलत्वासिद्धिप्रसङ्गात्। किञ्चैवमनुगतप्रतीत्या गोत्वादिकमपि न सिद्ध्येत्। उपाधिनैवान्यथासिद्धेः। यदि व्यक्त्यभेदादिबाधकाभावात्, तज्जातित्वं तदा प्रकृतेऽपि तुल्यम्। अपि च उक्तलक्षणस्याव्यवस्थापकत्वेऽपि निर्विकल्पकान्यप्रयत्नसंस्कारान्येत्यादिकं लक्षणमुभयानुगतं तद्व्यवस्थापकमस्तु। न च कार्य्याद्यनुगत एव तद्व्यवस्थापकोऽन्यथा यथाश्रुतयत्नेत्यादिना निर्विकल्पकसाधारणप्रत्यापत्तेरिति वाच्यम्। ज्ञानत्वेन तत्र सङ्करस्य बाधकत्वात्। प्रकृते चातथात्वात्। अन्यथा वेगादिसाधारणसंस्कारत्वजातिरपि न सिध्येत्। नहि तत्र कार्य्याद्यनुगमो व्यवस्थापकः किन्तु लक्षणमेव। वस्तुतस्तु भोगत्वावच्छिन्नकार्य्यतानिरूपितकारणतावच्छेदकतयापि तत्सिद्धिः। तस्माददृष्टत्वजातित्वे किं बाधकमिति।

(७८) साक्षादिति। उपाधिस्तु परस्परासम्बद्धः। परस्परासम्बद्धजाति-

तथाच धर्म्मिणां बहुत्वे धर्म्मस्य चानागन्तुकत्वे दिवच्चिते नित्यमेकमनेकवृत्ति सामान्यमिति सामान्यलक्षणं सूचितं भवति। तद्विविधम्। द्विविधं दर्शयति। परमपरञ्च। एकव्यक्तिसमावेशे सतीति चकारार्थः।

---

एकमिति स्वरूपाभिधानमात्रम्। न तु लक्षणमित्येके। एकं लक्षणमिति योज्यं लक्षणान्तरं वा। असमवायित्वे सत्यनेक समवेतत्वमित्यन्ये। अनेकवृत्तित्वमनेकाधारत्वम्। तच्चाभाव-समवाययोरप्यस्तीत्यत उक्त मेक मसहायम्। अभावसमवाययोश्च प्रतियोगिसम्बन्धिनौ सहायावित्यपरे। अनेकवृत्तित्वं स्वाश्रया-न्योन्याभावसामानाधिकरण्यम्। असमाविष्टजात्यो र्व्यावर्त्तनार्थ-माह। समावेशे सतीति। सामानाधिकरण्ये सतीत्यर्थः। यद्वा सामान्यं समाविष्टमसमाविष्टञ्चेत्येको विभागः। समाविष्टमपि परमपरञ्चेति विभक्तिविभाग इत्यसमाविष्टजात्यपेक्षया समुच्चयार्थ-श्चकार इत्यर्थः।

---

रूपत्वात्तस्येति भावः। असमवायित्वे सतीति। द्रव्यादावतिव्याप्तिवारणाय सत्यन्तम्। विशेषेऽतिव्याप्तिवारणायामेकेति। असहायमितरनिरूपणनिरूप्य-मिति यावदित्याहुः।

नन्वनेकवृत्तित्वमेकत्वमून्यवृत्तित्वमनेकत्व संख्याश्रयवृत्तित्वं वा। आद्ये द्रव्य-वृत्तिजातावव्याप्तिः। अन्त्ये गुणादिवृत्तिजातावव्याप्तिरित्यत आह। अनेका वृत्तित्वञ्चेति। स्वाश्रयपदेन यत्किञ्चित्स्वाश्रयो विवक्षितः। सामानाधिकरण्य-इति। तथाच गोत्वाश्वत्वयोः परापरभावाभावेऽपि न क्षतिरिति भावः।

नैकव्यक्तिकं सामान्यमस्तीत्याकाशादौ वच्यते। नान्यूनानतिरिक्तव्यक्तिकमिति। बुद्धिरुपलब्धिर्ज्ञानमिति पर्य्यवसियतौ न मिथो व्यभिचारीति निष्क्रमणप्रवेश-

नन्वेकव्यक्तिवृत्त्यप्याकाशत्वं जातिरस्तीति न तदनेकवृत्त्येवेत्यत आह। नैकेति। (७९) आकाशत्वं न जातिस्तदन्यावृत्तित्वादित्यर्थः। नान्यूनेति। बुद्धित्वं यदि ज्ञानान्यावृत्तित्वे सति ज्ञानत्वभिन्नं सामान्यं स्यात् किञ्चिज्ज्ञानावृत्ति स्यात् इत्येकसामान्यादेव तद्व्यवहारसिद्धौ भिन्ने तत्र मानाभाव इत्यर्थः।

यद्यप्येकव्यक्तिमात्रवृत्तिसामान्ययोः परापरभावक्षतिः। तथापीदृशमपि सामान्यं नेष्यत इति प्रसङ्गादुक्तम्। न मिथ इति। निष्क्रमणत्वप्रवेशनत्वयोर्जातित्वे यदेकनाड़िकायां प्रवेशनकर्म्म तदेवापरत्र निष्क्रमणकर्म्म भवति तदा जातिसङ्करः स्यादित्यर्थः। प्रसङ्गादाह सामान्यादीति। सामान्यादित्रिके जात्यनु-

(७९) आकाशत्वमिति। आकाशपदप्रवृत्तिनिमित्तमित्यर्थः। नातः सिद्धसिद्धिव्याघातः। शब्दाश्रयद्रव्यविभाजकोपाधिः पद इत्यन्ये। तदन्येति। आकाशान्येत्यर्थः। यद्यप्यवृत्तित्वादित्येव साध्यव्यापकत्वात् तथाप्यसिद्धिवारकसार्थकत्ववादिमतेनेदमित्येके। अखण्डाभावे वैयर्थ्यं नेत्यन्ये। बुद्धित्वमिति। सत्तादौ व्यभिचारवारणाय भिन्नान्तम्। स्वाभाविकार्थप्रवणत्वाद्युपाधौ व्यभिचारादाह। सामान्यमिति। जातिरित्यर्थः। एकमात्रेति। अन्यूनानतिरिक्तव्यक्तिकेत्यर्थः। परापरेति। अधिकदेशवृत्तेरेव परत्वात्। तथाच परापरभावानुपपत्त्यैव तयोर्जातित्वमित्यर्थः। प्रसङ्गादित्यापाततः। वस्तुतः अन्यूनानतिरिक्तव्यक्तिकसामान्यद्वयाङ्गीकारे समाविष्टजात्योः परापरभावनियम एवेत्युपोद्घातसङ्गतिरिति बोध्यम्।

नादौ जातिसङ्करापत्तौ न सामान्यादिव्यक्तिकं अनवस्थानात् लक्षणव्याघातादसम्बन्धाच्चेति। तस्मात् सामान्यं परस्परपरिहारस्थितिविरुद्धम्। अविरुद्धन्तु परापरभावस्थितीति नियमः। परं व्यापकमपरं व्याप्य-

---

पपत्तौ यथासंख्यमनवस्थादिहेतुत्रयम्। लक्षणेति। विशेषस्य सामान्यवत्त्वे सामान्यवत्तद्भिन्नत्वे सति समवेतत्व (८०) लक्षणव्याघात इत्यर्थः। असम्बन्धादिति। समवायस्य समवायान्तराभावादित्यर्थः। परत्वापरत्वे गुणौ न सामान्ये स्त इत्यत आह।

---

जातिसङ्कर इति। ननु सङ्करभयादेकस्य जातित्वमपरस्योपाधित्वमस्तु। एवं भूतत्वमूर्त्तत्वादावपि। न च विनिगमनाविरहान्नैवमिति वाच्यम्। शरीरत्वादिकमादाय विनिगमनाविरहात् पृथिवीत्वादेरपि जातित्वानापत्तेरिति चेत्। न। वक्ष्यमाणयुक्त्या पृथिवीत्वजातित्वेऽप्येतत् सङ्करभयेन शरीरत्वादेरुपाधित्वकल्पनात्। इह तु तद्वदेकस्य जातित्वव्यवस्थापकाभावात् विनिगमकाभाव इति भावः। अनवस्थानादिकमिति। यद्यपि सकलजातित्वस्यैकत्वेनैव तत्तज्जात्यन्तरसम्भवान्नानवस्था तथापि घटत्वादिकमन्तर्भाव्यापि तत्र जात्यन्तरसम्भव इत्यनवस्थोक्तेति केचित्। वस्तुतो जातित्वस्य स्वीकारे तस्य स्वावृत्तौ न सा जातिः। स्ववृत्तौ चानवस्थानवस्थितिः। आत्माश्रयेण स्वस्मिन्न स्वस्यावृत्तिरित्यत्र तात्पर्य्यमिति।

(८०) लक्षणव्याघात इति। ननु वस्त्वनुरोधेन लक्षणं नतु स्वकृतलक्षणानुरोधेन वस्तुव्यवस्थितिः। तथाच गुणादिभिन्नत्वे सत्येकमात्रसमवेतत्वमित्याद्यनेकलक्षणसम्भवात् कुतो लक्षणव्याघात इति।

ननु विशेषाणां सामान्यवत्त्वे पुनः समानजातीय धर्म्मवत्त्वेनात्यन्तव्यावृत्त्यनुपपत्तौ विशेषणसिद्धिरेव न स्यात्। अत्यन्तव्यावृत्त्यनुरोधेन तत्सिद्धेरन्यथा गुणादिनाप्यन्यथासिद्धिसम्भवादिति। धर्म्मिग्राहकप्रमाणेन परस्परलक्षणत्वेन सिद्धे सामा-

मित्यर्थः। प्रमाणं सूचयति। अनुवृत्तिप्रत्ययकारण-मिति। यदि सामान्यं न स्यात् भिन्नेष्वनुगताकारप्रत्ययो न स्यात्। द्रव्यगुणकर्म्मणामपि सामान्यद्वारैवानुप्रत्ययहेतुत्वात्।

---

परं व्यापकम्। यदीति। यद्यप्यत्र वैयधिकरण्यं तथाप्ययं गौरयं गौरित्यनुगतधीर्यद्युभयवादिसिद्धे तद्विषयभिन्नविषया न स्यादित्यनुगता धी र्न स्यादेकगोमात्रज्ञानवत्। यद्वा भिन्नानामभिन्नप्रतीत्यप्रयोजकतया यदत्र प्रयोजकं तदेव सामान्यमित्यध्यक्षमेवात्र मानमुक्तम्। द्रव्येति। तत्रापि परम्परासम्बन्धसामान्येनैवानुगतप्रत्ययादित्यर्थः।

---

न्यत्वं बाधितमित्यत्र तात्पर्य्यमिति चेन्न। लक्षणात्मकोपाधिसामान्यवत्त्वेऽपि समानजातीयधर्म्मवत्त्वेन दोषतादवस्थ्यापत्तेः। यदि च तथात्वेऽपि तत्तद्विशेषाणां स्वरूपेणात्यन्तव्यावृत्तबुद्धिहेतुत्वं तदा जातिमत्त्वेऽपि तुल्यम्। अथ क्लृप्तोपाधिनैवोपपत्तौ जातिकल्पने गौरवमिति चेन्न। जातिमात्रविलयापत्तेः। यदि चागतव्यवहारादिप्रयोजकतयानुगतधर्म्मसिद्धौ वाचकाभावात्, तज्जातित्वं तदा प्रकृतेऽपि तुल्यम्। उक्तबाधकस्यासिद्धेः। न च कारणतावच्छेदकतयान्यत्र जातिसिद्धिर्न च प्रकृते तथेति वाच्यम्। विशेषपदशक्यतावच्छेदके तथात्वापत्तेः।

यदि च क्लृप्तोपाधेरेव तथात्वं तदा कारणतावच्छेदकेऽपि तुल्यम्। संस्कारत्वादेरेवमतथात्वापत्तेश्च।

ननु द्रव्यकर्म्मभिन्नत्वे सति जातिमान् गुणः स्यादिति गुणभिन्नव्याघातादेरलक्षणव्याघात इति चेन्न। विपक्षे बाधकाभावात्। अन्यथा द्रव्यभिन्नत्वे सति यो जातिमान् स गुण इति कर्म्मापि विलीयेत। तस्मादत्र सिद्धान्ता-

परमुदाहरति तत्रेति। परं सत्ता सत्तासामान्यं परमिति व्यवहर्त्तव्यम्। कुतो महाविषयत्वात्। द्रव्यत्वादितोऽधिकविषयत्वात्। एवमन्यत्रापि। यदल्पापेक्षयाधिकविषयं तत्तदपेक्षया परमिति व्यवहर्त्तव्यं यथा सत्तेत्यर्थः। सा च सत्ता सामान्यमेव न तु द्रव्यत्वादिवद्विशेषोऽपि। कुतोऽनुवृत्तेरेवेति।

---

ननु सत्तावदन्यदपि परं सामान्यमस्ति इत्यत आह। (८१) उदाहरतीति। ननु व्यापकत्वे साध्ये महाविषयत्वं हेतुः साध्याविशिष्ट इत्यत आह। व्यवहर्त्तव्यमिति। एवमिति। यत्सामान्यं यत्समानाधिकरणं सत् यदत्यन्ताभावसमानाधिकरणं तत्तस्य परमित्यर्थः। न त्विति। तस्य स्वाश्रये विजातीयव्यावृत्तधी-

---

बलस्वनमपहाय चिन्ता। एकगोमात्रेति। यद्यप्ययं गौरितिधी र्न दृष्टान्तः तथापि यत्रेदन्त्वमात्रेण दोषाद्गोमात्रज्ञानं तस्य तद्दृष्टान्तत्वम्। यद्यप्येकगवेति युक्तं तथापि समासान्तविरोधे इत्यादिकं बोध्यम्। ज्ञानविशेषणमेकमित्यन्ये। भिन्नानामिति। न चोपाधिनान्यथासिद्धिः। जात्यन्तराभ्युपगमे तद्ग्राह्यानामननुगतत्वात्। परस्परासम्बद्धजातेरेव तथात्वादिति भावः। तत्रापीति। अयं दण्डी अयं दण्डीति अनुगतबुद्धावपीत्यर्थः।

(८१) उदाहरतीति। उदाहरणमात्र मेतदेव परमिति भावः। साध्याविशिष्ट इति। यद्यप्युपाधिभेदाद्भेदः सम्भवति तथापि सौकर्य्यादिदमुक्तमिति ध्येयम्।

यत्सामान्यमिति। गोत्वाश्वत्वादावतिव्याप्तिप्रसङ्गवारणाय समानाधिकरणान्तम्। सत्तापेक्षया द्रव्यत्वस्य परत्वापत्तिभयादाह। यदत्यन्ताभावेति। जातिः

ननु सामान्यादिभ्यो व्यावर्त्तमानापि सत्ता यदि स्वाश्रयं ततो न व्यावर्त्तयेत् द्रव्यत्वादिकमपि न व्यावर्त्तयेदविशेषात्। न। सत्ताया व्यक्तिमात्रव्यङ्ग्य-तया व्यञ्जकनियमाभावात्। बाधकात्तु सामान्यादौ तत्त्यागः। सामान्यान्तरस्य हि संस्थानगुणकार्य्य-कारणादिव्यङ्ग्यतया तेषाञ्चानियतत्वात् न सर्व्वत्रा-भिव्यक्तिः।

---

हेतुत्वादित्यर्थः। सत्ताया इति। यद्यप्यभावाद्व्यावृत्तिबोधकत्व-मस्त्येव न च भावात् तद्बोधकत्वं सामान्यादावौपपत्तिकसत्ता-व्यतिरेकनिश्चये ततोऽपि व्यावृत्तबोधकत्वात्। तथापि जाति-मद्व्यक्तिप्रतियोगिकव्यावृत्तबोधकतया सत्तासामान्यमेवेति तात्-पर्य्यम्। बाधकादिति। सत्प्रत्ययानुगमस्य सर्व्वभावसाधारण्ये-ऽपि सामान्यादावुक्तबाधकान्न सत्तास्वीकार इत्यर्थः। द्रव्यत्वादि-वैधुर्य्यमाह। सामान्यान्तरस्येति। द्रव्यत्वादिकं न सर्व्वत्र सामान्य-वति प्रतीयते सत्ता तु न तथेत्यर्थः। अत्र हेतुः। संस्थानेति। वस्तुस्वभावोऽत्र नियामक इति भावः।

---

परसामान्यपदोपादानेन जातिव्यापकत्वनिर्वचनमिदमिति ध्वनितम्। ननु व्यापकत्वमात्रलक्षणं प्रमेयत्वाभिधेयत्वादावव्याप्तिप्रसङ्गात्। द्रव्यत्ववत्त्वस्य पृथि-वीत्वव्यवस्थापकत्वप्रसङ्गाच्चेति।

नन्वेवं गुणादिवृत्तिजातेः सर्व्वत्राभिव्यक्त्यापत्ति स्तत्र संस्थानादेरभिव्यञ्जकत्वा-भावादित्यनुशयेनाह। वस्तुस्वभाव एवेति।

तर्हि वस्तुस्वरूपमेव सत्तास्तु। न च गोत्वाद्यभावेऽपि यदि गौरिति प्रत्ययानुवृत्तिः स्वरूपतः स्यात् तदाश्वादावपि स्यादितिवत् यदि सत्तया विना सत् सदिति प्रत्ययानुवृत्तिः स्वरूपतः स्यात्। सर्व्वत्र स्यादित्यनिष्टापत्तिरिति वाच्यम्। तदनुवृत्ते स्तदभावेऽपीष्टत्वादिति। न। प्रत्ययानुवृत्तेर्निमित्तमन्तरेणानु-

---

नन्वेवं किं सत्तया। तां विनापि सदिति बुद्धेरुपपन्नत्वात् स्वरूपमेव तद्बीजमस्त्वित्याह। तर्हीति। तदनुवृत्तेः सत्प्रत्ययानुवृत्तेरित्यर्थः। तदभावेऽपि सामान्यादौ सत्ताया अभावेऽपीत्यर्थः। प्रत्ययेति। भिन्नेषु सदित्यनुगतप्रत्ययस्याननुगताप्रयोज्यतया यदत्र प्रयोजकं तत्सत्तासामान्यमध्यक्षमेवेत्यर्थः। न च (८२) प्रामाणिकत्वेनोपाधिना तदुपपत्तिः साक्षात्सम्बन्धधर्म्मबाधे सत्येव परम्परासम्बन्धोपाधिव्यवस्थितेः। प्रमाणप्रवृत्तेः प्राक् सदिति बुद्ध्यनापत्तेः। अतीतानागतयोरपि प्रामाणिकतया सदिति बुद्ध्या-

---

(८२) प्रामाणिकत्वेनेति। एवञ्च सामान्यादावपि सत्प्रत्ययो बाधित एवेति भावः। न चाभावेऽपि सत्प्रत्ययः स्यादुक्तरूपसत्त्वादिति वाच्यम्। भावत्वेन विशेषणादित्याहुः।

प्रमाणेति। तथाच तद्विनापि तदा सद्व्यवहारदर्शनात् तत्प्रयोजकतयावश्यं सत्ता-स्वीकार इति भावः।

ननु कस्यचिद् योगादेः प्रमाणवृत्तिरस्त्येव तद्योग्यता वा तद्व्यवहाराङ्गं सा च तदास्त्येवेति अनुशयादाह। अतीतेति। यद्यप्यत्रेष्टापत्तिः। अतीते वर्त्तमानत्वप्रत्ययाभावेऽपि स घटः सन्निति प्रत्ययात्। सत्ताजातिवादिनापि

पपत्तेः। न च विशेषा एव तन्निमित्तं लक्षणमात्रं वा। सामान्यभावोच्छेदप्रसङ्गात्। न हि विशेषान् लक्षणं वा विहाय क्वचित् सामान्याभिव्यक्तिरस्ति कथं तर्हि सामान्यादौ तत् सदिति प्रत्ययः। सत्तैकार्थसम-

---

पत्तेश्च। रूपादयो द्रव्यवृत्तिमन्तः जातित्वात् घटवत्। न च द्रव्यत्वमुपाधिः उक्तविपक्षबाधकाद्धेतोः साध्यव्याप्यतया उपाधेः साध्याव्यापकत्वात्। यद्वा द्रव्यत्वादीनि जातिव्याप्यानि जाति-मन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगिजातित्वात् घटवदित्यप्याहुः। विशेषा-

---

तदभ्युपगमात्। न च तदाश्रयाभावेन तत्र सत्ताविरहात् न तदभ्युपगम इति वाच्यम्। तथा सति घटबुद्धेरप्यनापत्तेः। तथाप्यभावेऽतिप्रसक्तिं भावत्वविशेषणे तदेवास्तु तदननुसन्धानेऽपि सात्प्रत्ययाच्चेत्यादि दूषणे तात्पर्य्यम्।

यद्वेति। व्याप्यत्वं भेदगर्भमतो नार्थान्तरम्। ननु जातिमदित्यादि विशेषण-व्यावर्त्त्यसत्तयाऽसिद्धौ तद्वैयर्थ्यं तत्सिद्धौ किमनुमानेनेति चेत्। न। अनवस्था-भयेन क्वचिदपि साध्याभाव-स्वीकारेण जातित्वस्य सामान्यतोऽनैकान्तिकत्वे निर्व्वि-कल्पकसाधकानुमाने विशिष्टपदस्येव व्याप्तिग्रहोपयिकत्वेन सार्थकत्वात्। न च द्रव्यगुणोभयमात्रवृत्तित्वेनार्थान्तरं कर्म्मत्वे व्यभिचारात्। द्वयद्वयवृत्तिजातिद्वयन्तु जातिसङ्करभयादेव नेति पक्षधर्म्मताबलादेकस्याश्रितयानुगतार्थसिद्धिरिति भावः। वस्तुतस्तु जात्याश्रयत्वं क्वचिदस्ति क्वचिन्नास्तीति सर्व्वसिद्धम्। तथाच सम्भवत-स्त्यागायोगादिति न्यायेनानुगतो धर्म्मोऽवश्यं वाच्य इति स एव बाधकाभावात् तज्जातिरूप एव कल्प्यत इति तत्त्वम्। जातित्वादौ व्यभिचारवारणायान्तिम-जातिपदम्। अत्राप्यनेकसमवेतत्व एव तात्पर्य्यम्। अभावस्येति।

ननु अभावत्वेनोपस्थितौ तदभावेऽपीदन्त्वेनोपस्थितौ तदभावे बाधकाभावः। किञ्च विरोधित्वेनास्फुरणदशायां अभावत्वेनोपस्थितावपि तदारोपः स्यादेव।

वायात्। गुणादिषु संख्यादिप्रत्ययवत्। अभावेऽपि तर्हि स्यादिति चेन्न। तस्य सद्विरुद्धतयैव प्रतीतेरिति।

द्रव्यत्वाद्यपरं सत्तापेक्षयाल्पविषयत्वात्। तच्चेति च स्त्वर्थः। अपिः समुच्चये। अनुवृत्तेर्हेतुत्वादिति। हेतुमनुकर्षति। सत्तायामन्येषु च एकैकनिमित्तवशा-

---

स्तत्तद्व्यक्तयः। लक्षणं द्रव्यव्यञ्जकम्। सत्तैकार्थेति। यद्यपि नायं सम्बन्धः समवाये तथापि सत्तैकार्थाधेयत्वं विवक्षितम्। अभावे चातिप्रसक्तिमग्रे निराकरिष्यति। यद्वा आरोपनिमित्तं सत्तया सम्बन्धमात्मनैनोपलक्षितम्। तस्येति सामान्यादीनां भावत्वेन तदुपस्थिति र्न सत्तारोपविरोधिनी अभावस्य तत्त्वेनोपस्थिति-स्तदारोपप्रतिबन्धिकेत्यर्थः।

द्रव्यत्वादीति। (८३) समानाधिकरणसामान्यसमानाधि-करणात्यन्ताभावप्रतियोगीत्यर्थः। चकारो व्यावृत्त्यर्थो न सत्ता-पेक्षया समुच्चयार्थः। सत्ताया विशेषत्वाभावादित्याह। च इति।

---

नहि वस्तुतो यो विरोधी तदुपस्थितिमात्रं तदारोपप्रतिबन्धकं सामान्यत्वादेरपि तथात्वेन तथात्वापत्तेरिति चेन्न। आरोपे सति निमित्तानुसरणमिति न्यायात्। अत्र स्वभावादेव नारोप इत्येके। विरोधित्वेनोपस्थित्यभिप्रायेणेदं तदनुपस्थिताव-भावः सन्नित्यारोपः कदाचिद् भवत्येव सामग्रीसत्त्वादित्यन्ये। सत्तावच्छिन्नत्व-गर्भमभावत्वम्। तथाच सत्तावच्छिन्नत्वप्रतीतौ न सत्तावत्त्वभान मित्यभिप्राय इत्यपरे।

(८३) समानाधिकरणेति। स्वसमानाधिकरणीभूतयत्सामान्यसमानाधि-करणीभूतात्यन्ताभाव-प्रतियोगि यत्सामान्यं तत्तद्व्याप्यमित्यर्थः।

देकैका संज्ञा । इह तु निमित्तद्वयसमावेशात् संज्ञाद्वयसमावेश इत्यर्थः । अतद्व्युत्पादनप्रयोजनं साधर्म्म्यादौ भविष्यतीति विशेषानाह । नित्येति । बहुवचनेनानन्त्यं लक्षयति । ते के । अन्त्याः । अन्ते अवसाने भवन्ति सन्तीति यावत् । येभ्योऽपरे विशेषा न सन्तीत्यर्थः । सामान्यरूपेभ्यो विशेषेभ्योऽपरे गुणादयो विशेषाः सन्ति । एभ्यस्तु नापरे किन्त्वेष्वेव वैशिष्ट्यं समाप्यते । क्व ते वर्त्तन्त इत्यत उक्तं नित्येति । अयमर्थः । अनित्यद्रव्येषु तावदाश्रयादि-

---

ननु विशेषत्वे हेत्वभिधाने सामान्यरूपत्वे हेतु र्नोक्त इत्यत आह अपिरिति । आनन्त्यं बहुत्वम् । न तु समवायवदेकत्वमिति भावः ।

ननु भवन्ति जायन्ते इत्यत्र विरोधो विशेषाणां नित्यत्वादित्यत आह । सन्तीति । विद्यन्ते इत्यर्थः । अवसानं स्पष्टयति । सामान्यरूपेभ्य इति । यथैकजात्याश्रये गुणादिनापि व्यावृत्तधीस्तथा न विशेषाश्रयेऽन्याधीना व्यावृत्तिरित्यर्थः ।

ननु व्यावृत्तिधीबलादनित्यद्रव्येष्वपि कुतो न विशेषा इत्यत आह । अयमर्थ इति । अस्ति तावत् परमाणुषु समानजातिगुणकर्म्मसु मिथो व्यावृत्ति स्तद्यदेवात्र व्यावर्त्तकं स विशेषः । सा

---

ननु बहुवचनं नानन्त्यप्रतिपादकं त्रिष्वपि तत्प्रयोगात् । न । तथाच बहुवचनेनानन्त्यं विवक्षितमित्ययुक्तमित्यत आह । आनन्त्यमिति ।

देव विशिष्टबुद्धिरुपपन्नेति ततोऽधिकविशेषेषु प्रमाणा-भावः । नित्येषु तु द्रव्येषु आश्रयरहितेषु समानजातीयेषु समानगुणकर्म्मसु च भवितव्यं व्यावर्त्तकेन केन-चिद्धर्म्मेण व्यावृत्तत्वात् ।

---

हि वैधर्म्म्यव्याप्ता न तु पृथक्त्वमेव तद्व्यावर्त्तकम् । न च या यतो व्यावृत्तधीः सा तद्धर्म्मासमानव्यावर्त्तकधर्म्माधीना यथा घटे पटा-द्व्यावृत्तिधीः पटत्वविसदृशघटत्वधर्म्मकार्य्येति वाच्यम् । जाति-त्वेन तयोः (८४) सादृश्याद्व्याप्तेरसिद्धेः । विशेषाणामपि विशेषत्वेन समानत्वाच्च । न च जात्या समानत्वं विवक्षितम् । गुणादिना तादृशेन व्यावृत्तिधीदर्शनाद्व्यभिचारात् । मैवम् । गुणानामपि स्वा-श्रयवृत्त्यसिद्धौ व्यावृत्त्यसिद्धेः । अन्यथान्योन्याश्रयापत्तेः । विशेषा-णाञ्च स्वाश्रयवत् स्वस्मिन्नपि व्यावृत्तधीजनकत्वं स्वाभावात् सिद्ध्य-सिद्धिव्याघाताच्च । अयमनारब्धद्रव्यः परमाणुरेतत्परमाणुनिष्ठ-जातिगुणकर्म्मभिन्नधर्म्मसमवायी परमाणुत्वात् । अन्यपरमाणुवत् । विपक्षे बाधकस्य व्यावर्त्तकधर्म्माभावादभेदप्रसङ्ग इत्यप्याहुः ।

---

(८४) तयोरिति । घटत्वपटत्वयोरित्यर्थः । तादृशेनेति । जात्या समाने-नेत्यर्थः । गुणानामिति । पृथक्त्वादीनामित्यर्थः । यदि पृथक्त्वमात्रमाशङ्कितं तथापि गुणान्तरस्यापि सम्भावितत्वात् बहुवचनमुक्तम् ।

नन्वयं दोषो विशेषेष्वपि तुल्य इत्यत आह । विशेषाणाञ्चेति । ननु स्वभाव एव तेषां कथं तादृशोऽन्यथा गुणादेरपि तादृक् स्वभावः किं न स्यादि-त्यत आह । सिद्ध्यसिद्धीति । असिद्धावाश्रयासिद्धिः । सिद्धौ धर्म्मिग्राहक-

न चैवं गुणादिष्वपि तत्कल्पनावकाशः। आश्रय-विशेषेणैव तद्व्यावृत्त्युपपत्तेरिति प्रमाणसूचनम्। तथाच वक्ष्यते। ननु सामान्यान्येव कानिचित् तथा भविष्यन्ति गुणा वा किं पदार्थान्तरकल्पनयेत्यत आह। तेचेति। च स्त्वर्थः। अयमर्थः। ते पुन

---

अतएवाह प्रमाणसूचनमिति। विशेषा एवेति। व्यावृत्ता एवेत्यर्थः। स्वरूपेति। स्वरूपेण सन्तो नतु सत्तायोगेनेत्यर्थः।

---

मानेन तत्स्वभावत्वेनैव तत्सिद्धेः। गुणादेरन्यथैव सिद्धेरिति भावः। अयमिति। द्व्यणुकेनार्थान्तरवारणायारब्धद्रव्य इति। न च परमते शक्तिसादृश्यादिना अर्थान्तरम्। स्वमतावष्टम्भेनोक्तत्वात्।

नन्वेतत्परमाणुनिष्ठत्वे विशेषणे व्यर्थे द्रव्यसमवायित्वेनैव परमाण्वन्तरस्य दृष्टान्तत्वात्। अतएव परमाणुत्वादिर्हेतुरपि। अन्यथा परमाणुत्वमपरमाणुत्वा-वच्छिन्नपरिमाणवत्त्वमिति यथाश्रुतसाध्ये परिमाणवत्त्वहेतोरेव सामर्थ्ये व्यर्थविशे-षणत्वापत्तेः। अनारब्ध-द्रव्यमनःपरमाणोः पक्षसमत्वेन व्यभिचाराभावादिति चेन्न। परमाण्वन्तरस्यारब्ध-द्रव्यत्वाग्रहदशायां न तथा सत्यनुमानप्रवृत्तिः स्या-दिति। तदा व्याप्तिग्राहकत्वे सार्थकत्वमित्येके। अनारब्धद्रव्य इति साध्यविशेष-णम्। तथाचारब्धद्रव्यः सन्नेतादृशधर्म्मसमवायीत्यर्थः।

एवञ्च परमाण्वन्तरे साध्यवैकल्योद्धारार्थं तद्विशेषणमित्यन्ये। नन्वेवं विशेष्यता-भिन्नेति विशेषणस्यापि दानात् तदतिरिक्तधर्म्मोऽपि सिद्धेरदित्यत आह। विपक्षेति। तथाच धर्म्मान्तरसिद्धौ न सोऽस्तीति न तत्सिद्धिरिति भावः। इत्यपीत्यस्वरसोद्भावनम्। तद्बीजन्तु विपक्षबाधकाश्रयणे किं महाविद्यया सामान्यतो दृष्टेनैवान्योन्यव्यावर्त्तकधर्म्मसिद्धेः। तदनाश्रयणे प्रकृतानुमानप्रयो-जकमिति।

र्यद्येकैकव्यक्तिवृत्तयः कथं सामान्यरूपाः। अनेकव्यक्तिवृत्तित्वेन कथ मत्यन्तव्यावृत्तिबुद्धिहेतवः। गुणा अपि भवन्तः यदि सामान्यवन्तः स्युः तथाप्यत्यन्तव्यावृत्तिहेतुत्वं व्याहन्येत। ततो निःसामान्या स्तथाच गुणत्वव्याघात स्तस्मादन्यव्यपदेशाद् व्यावृत्तिबुद्धेरेव हेतुत्वाद्विशेषा एव विशेषा नान्यत्वान्तर्भूता इति। एकद्रव्याः स्वरूपसन्त इति लक्षणं सूचित मिति। एवञ्च सति नि.सामान्यत्वेऽपि विशेषोऽयं विशेषोऽय मित्यनुगतव्यवहार उपाधे र्लक्षणञ्चोपाधिरध्यवसेय इति।

---

निःसामान्यत्वे सत्येक (८५) द्रव्यमात्रवृत्तित्वमिति लक्षणार्थः। एवञ्चेति। विशेषपदसंकेतग्रहोऽपि तत एवेति द्रष्टव्यम्।

---

(८५) जातावतिव्याप्ते राह। एकमात्रेति। फलित मर्थमाह। निःसामान्यत्व इति। रूपादा वतिव्याप्तेराह सत्यन्तं। द्रव्यत्वेऽतिव्याप्तेराह एकेति। जातावतिव्याप्तेराह मात्रेति। द्रव्यपदं स्वरूपनिर्वचनं। केचित्तु समयत्वेऽव्याप्तेराह द्रव्यपदं। नच समवायार्थक वृत्तिपदेनैव तन्निरासः। स्वरूपसम्बन्धेनैव वृत्तेः। स्वरूपं तत्र समवाय एवेत्याहुः। वृत्तिपदञ्च समवायपरं। तेनैतद्घटत्वादावुपाधौ नातिव्याप्तिः।

लक्षणार्थ इति। लक्षणवाक्यार्थ इत्यर्थः। नन्वाकाशेश्वरवृत्तिविशेषे मानाभावः। रागध्वंसनित्यज्ञानादिव्यावर्त्तकान्तरसद्भावे ऽनुमानस्यान्यथासिद्धेरिति चेत्। अत्राहुः। तत्र विशेषो न स्वीक्रियत एवेत्येके। नित्यद्रव्येण तत्रापि

समवायस्यैकत्वा द्विभागो नास्तीति लक्षण माह। अयुतसिद्धानामिति। अयुताः प्राप्ताश्च सिद्धा इति अयुतसिद्धाः। प्राप्ता एव सन्ति नाप्राप्ता इति यावत्। तेषां सम्बन्धः प्राप्तिलक्षणः समवायः। तेन सम्बन्धो व्यवच्छिन्नः। तस्याप्राप्तिप्रवर्त्तकत्वात्। तथाच नित्यप्राप्तिः समवाय इति लक्षणं सूचितं। अजसंयोगा-

---

(८६) ननु चायुतसिद्धौ यदि युतौ न सिद्धौ तदा कयोः सम्बन्धो धर्म्मिणोरेवाभावात्। अथायुतौ सिद्धौ तथापि कयोः सम्बन्धः सम्बन्धिनोरपृथग्भूतत्वात्। पृथग्भूतयोरेव सम्बन्धादित्यत आह। अयुता इति। अन्योन्यपरिहारेण पृथगाश्रयानाश्रिता इत्यर्थः। एतदेव स्पष्टयति। प्राप्ता एवेति। अनेनाप्राप्तिर्निषिध्यते। साच प्राप्तिः प्रागभावः। तथाच तदप्रतियोगा सम्बन्ध इत्यर्थः। तेन विशेषणताख्योऽपि अनित्यः सम्बन्धो निरस्तः। अजेति। विभुनो र्मिथः संयोगो नास्ति। अज इति

---

तदनुमान मतएव कुसुमाञ्जलिप्रकाशे आकाशैकगुणत्वादित्यत्र गुणपदं व्योमवृत्तिविशेषे व्यभिचारवारणायेत्युक्तम्। इत्यन्ये॥

(८६) ननुचायुतसिद्धा वित्यत्र विशिष्टाभावो विशेष्याभावाद्विशेषणाभावाद्वा। आद्ये यदीति। अन्त्ये अथेति। आश्रितपरिहारेणाश्रयोऽप्याश्रितो भवत्येवेत्यत आह। अन्योन्येति। विशेषणताख्य इति। नित्यद्वयनिरूपितविशेषणताख्य इत्यर्थः। यद्यपि नित्यस्य तस्य प्रागभावाप्रतियोगिसम्बद्धत्वात् तत्रातिव्याप्तिरेव तथापि सम्बन्धपदस्य सम्बन्धिद्वयातिरिक्तसम्बन्धपरत्वादेतदुक्तम्।

भावो वच्यते। समवायस्य नित्यत्वञ्च प्राप्तिपदेनैव वाच्यवाचकादिभावलक्षणः सम्बन्धो न प्रसज्यते। एतदेव स्पष्टयति आधार्य्याधारभूतानामिति। स्वभावादाधार्य्याधारणं नत्वागन्तुकेन धर्म्मेणेत्यर्थः। तच्च

---

न तत्रातिव्याप्तिरित्यर्थः। प्राप्तिपदेनेति। न च नित्यपदेनैव तन्निरासः। अस्येश्वरेच्छारूपतया नित्यत्वात्। यद्यपि प्राप्तित्वं संयोगसमवायान्यतरत्वमित्यन्योन्याश्रय स्तथापि जातिशून्यत्वे सति सामान्यत्वविशेषत्वशून्यभावत्वं तल्लक्षण मनेनोपलक्षितम्। संयोगिनोरप्याधाराधेयभावादाह। स्वभाव इति। (८७) इह

---

इच्छेति। ईश्वरेच्छेत्यर्थः। प्राप्तित्वमिति। यदि च प्राप्तित्वं सम्बन्धिभिन्न-सम्बन्धत्वं तदा वाच्यवाचकभावसम्बन्धेऽतिप्रसक्तितादवस्थ्यमेवेति संयोगसमवाया-न्यतरत्वमेव तद्वाच्यं। एवञ्चान्योन्याश्रय इति भावः। तथापीति। ननु सामान्यत्वञ्च मनेकव्यक्तिसमवेतत्वगर्भं विशेषत्वञ्च एकद्रव्यमात्रसमवेतत्वगर्भ मित्या-त्माश्रय इति चेत्। अत्राहुः। सम्बन्धिभेदेऽप्यभिन्नसम्बन्धत्वमनेनोपलक्षितं। न चेद मन्यत्र। संयोगस्य संयोगिभेदभिन्नत्वेन तद्गर्भसंयुक्तसमवायादीनामपि तथात्वादभावे च सम्बन्धिन एव सम्बन्धत्वेन तद्भेदेन भेदनियमात्। विषय-विशेषोपहितेच्छयोः संकेतत्वेन तस्यापि विषयरूपसम्बन्धिभेदेन विशिष्टसम्बन्ध-भेदादिति प्राहुः। प्रकृते सामान्यत्वं विशेषत्वं समवायघटितं अन्यथैव निर्वाच्यं अतो नोक्त मित्यन्ये॥

(८७) इहेति। संयोगेनासिद्धसाधनवारणाय तन्तुष्विति। नचानुमानिकेह-प्रत्ययेऽंशतो बाध इति वाच्यम्। पक्षतावच्छेदकधर्म्मावच्छेदेन साध्यसिद्धेरनुद्देश्य-त्वात् किन्तु तत्सामानाधिकरण्यमात्रेणेत्येके। लौकिक प्रत्ययेति विशेषणमित्यन्ये। यथार्थेति। यथार्थलौकिकं विशिष्टप्रत्यक्षत्वादित्यर्थः।

प्रमाणमाह। इह प्रत्ययहेतुरिति। इह तन्तुषु पट इह पटे शुक्लत्वं इह गवि गोत्वमित्यादयः सम्बन्ध मन्तरेणानुपपद्यमाना स्तं व्यवस्थापयन्तीत्यर्थः।

---

तन्तुष्विति। इह तन्तुषु पट इत्यादिधी राधाराधेयसम्बन्धनिमित्ता यथार्थेहज्ञानवत्त्वात्। इह कुण्डे वदरमितिवदनुमानात् तत्सिद्धिरित्यर्थः।

नन्विह घटाभाव इह घटे ज्ञानमिति प्रतीत्या व्यभिचारः। नच वाधकाभावे सतीति विशेषणं व्यर्थं विशेष्यत्वात् वाधकाभावस्यैव साधकत्वात्। आधाराधेयभावेन सिद्धसाधनत्वाच्च। नैवं। तत्रापि स्वरूपसम्बन्धस्य सत्त्वात्। नच तेनैवार्थान्तरं लाघवादेकस्यैव सम्बन्धस्य सिद्धेः। स्वरूपसम्बन्धस्य च तत्तत्स्वरूपात्मक-

---

ननु सम्बन्धिभिन्नसम्बन्धनिमित्तकत्वं साध्यं सम्बन्धमात्रनिमित्तकत्वं वा। आद्ये दोष माह। इह घटे इति। साधकेति। तथाच विशेषणासिद्धिरिति भावः। अन्त्यं दूषयति। आधारेति।

ननु धर्म्मिकल्पनात इति न्यायेन क्लृप्तानां तत्तत्स्वरूपाणां सम्बन्धत्वमात्र कल्पन मर्हं न तु समवायरूपधर्मिकल्पन मित्यरुचे राह। अनुगतेति। समवायस्यानुगतत्वं न तत्तत् स्वरूपस्याननुगतत्व मिति भावः।

ननु समवायत्वावच्छिन्नकारणतानिरूपितं कार्य्यतावच्छेदकं न लौकिक विशिष्टप्रत्यक्षत्वं। अभावादिविशिष्टबुद्धौ व्यभिचारात्। विशेषणसम्बन्धत्वेनैव स्वरूपसम्बन्धसाधारणेन तदवच्छिन्नहेतुत्वाच्च। न च सम्बन्धत्व मननुगतमिति वाच्यम्। तथासति व्यापकतावच्छेदकाननुगमेन व्याप्यग्रहापत्तेः। यदि च विशिष्टधीनियामकत्वादिना तत् सुवचं तदा तुल्यं। न च गुणादिविशिष्टप्रत्यक्षत्वं तथा। आदित्वस्यैकस्याभावेनाननुगतत्वात्।

अथान्येऽपि शक्तिसंख्यासादृश्यादयः पदार्थाः किं नोद्दिष्टा इत्यत आह । एवमिति । एवमुक्तेन क्रमेण ।

---

त्वेनानन्तत्वात् । अनुगतकार्य्यस्यानुगतकारणताप्रयोज्यत्वात् सामान्यविशेषान्यनिःसामान्यभावान्योन्याभाववद्भावत्वात् । द्रव्यत्ववदित्यप्याहुः ॥

धर्म्मान् परित्यज्य धर्म्मिणामुद्देशः कृत इति वृत्तानुकीर्त्तनं निरस्याशङ्कृाह । अथेति । यद्यपि द्रव्यादीनां विभागोऽपि कृतः तथापि नामसंकीर्त्तनरूपतया तस्योद्देश एवान्तर्भाव इति

---

ननु चायुतसिद्धसम्बन्धि ताद्दशप्रत्यक्षत्वं तथेति चेत् । न । तस्य कार्य्यतावच्छेदकत्वे मानाभावा दन्यथा युतसिद्धसम्बन्धप्रत्यक्षत्वस्यापि तथात्वे ऽनुगतकल्पनापत्तेः ।

ननु विशिष्टप्रत्यक्षे विशेषणसम्बन्ध स्तद्विशिष्टप्रत्यक्षे तद्विशेषणसम्बन्धो हेतुरिति सामान्यविशेषसामग्रीभ्यामेव तदुत्पत्ते र्युतसिद्धसम्बन्धिप्रत्यक्षत्वस्य कार्य्यतावच्छेदकत्वे मानाभावः । भावे चायुतसिद्धसम्बन्धिनिरूपितसम्बन्धत्वेनैव हेतुत्वमस्त्विति चेत् तुल्यं प्रकृतेऽपि । एतेन गुणादिविशिष्टप्रत्यक्षत्वं प्रत्येकमेव कार्य्यतावच्छेदकं तदनुगमस्यादोषत्वात् तत्र समवायत्वेन हेतुत्वमिति परास्तम् । उक्तन्याये अन्यथोपपत्ते स्तत्कार्य्यतावच्छेदकत्वे मानाभावः । भावे वा तत्र स्वरूपाणां गुणनिरूपितसम्बन्धत्वेन गुणत्वेनैवाहेतुतापत्तेः । न च लाघवादेकव्यक्तेरेव हेतुत्वं । धर्म्मिकल्पनात इति न्यायेन विपरीतगौरवापत्तेरित्यादि प्रत्यक्षप्रकाशे द्रष्टव्यम् ।

अपोत्यस्वरसे । तद्बीजन्तु यद्युक्तविपक्षबाधकानामाश्रयणं तदा प्रयोजकत्व मन्यथा समवायान्यतदन्यविशेषणप्रक्षेपादनन्तपदार्थापत्तिः । तदाश्रयणेतु पूर्व्वोक्तानुमानादेव तत्सिद्धिरिति ॥

धर्म्मिणामुना धर्म्मा एव परं नोद्दिष्टाः। शक्त्यादीना-मेष्वेवान्तर्भावात् तथा वक्ष्यामः। यद्यपि च सामान्य-विशेषसमवायानां लक्षणमप्युक्तं तथापि तस्येहाव्यु-त्पादनादनुक्तकल्पतयोद्देशः कृत इत्याह।

यद्यपि च धर्म्मा अपि षड्भ्यो नातिरिच्यन्ते तथापि त एव परस्परसङ्कल्यमापन्नाः परस्परविवेकायो-पयोच्यन्ते इति पृथगुच्यन्ते इत्यभिप्रायवानाह। षण्णा-मपीति। अपि रभिव्याप्तौ। अस्तित्वं विधिमुखप्रत्यय-त्वम्। प्रतियोग्यनपेक्षनिरूपणमिति यावत्। अभिधे-

भावः। धर्म्मा एवेति। धर्म्मिणां सर्व्वेषामुद्देशादपरे धर्म्मिणो न सन्तीत्यर्थः। अनुक्तेति। तत्र लक्षणे न तात्पर्य्यमित्यर्थः। तथापीति। द्रव्यादीनां स्वातन्त्र्येणैवोद्देशात् न तु मिथो विशे-षणविशेष्यभावेनेति अग्रे लक्षणपरत्वेनोच्यते इत्यर्थः। परस्परेति केवलान्वयिधर्म्मेतरपरम्। समुच्चेयानामनुपपत्तेराह। अपिरिति।

नन्वस्तित्व मस्तीति वेद्यत्वं तदभावेऽप्यस्तीत्यत आह। विधि-मुखेति। विधिमुखप्रत्ययवेद्यत्वं स्वरूपमभावेऽप्यस्तीत्यत आह। प्रतियोगीति। यद्यपि प्रमेयत्वेनाभावो ज्ञायमानः प्रतियोग्यन-पेक्षनिरूपण एवेति अतिव्याप्तिस्तथापि (८८) असमवायित्वे गुण-

(८८) असमवाय इति। अत्र सत्यन्तद्वयं प्रतियोगिविशेषणं तेन विशिष्टा-भावस्य समवायज्ञानादौ च सत्त्वान्नातिव्याप्तिः। अन्यथा तदव्याप्तिवारणार्थमुपा-त्तस्य तस्याव्याप्तितादवस्थ्ये व्यर्थत्वापत्तेः।

यत्व मभिधानयोग्यत्वम्। शब्देन सङ्गतिलक्षणः सम्बन्धः। ज्ञेयत्वं ज्ञानयोग्यता। ज्ञाप्यज्ञापकभावलक्षणः सम्बन्धः।

---

त्वशून्यत्वे च सति सविकल्पकमात्राविषयत्वं भावत्वं वा विवक्षितम्। अभिधेयत्व मभिधानकर्म्मत्व मभिधानदशायामव्यापकमिति तद्व्याचष्टे। अभिधानेति। योग्यतावच्छेदकमाह। शब्देनेति। एवमुत्तरत्र।

---

नन्वाकाशादावव्याप्ति स्तस्य सविकल्पकमात्रविषयत्वात्। न च प्रत्यक्षत्वं सविकल्पके विशेषणं सत्यन्तवैयर्थ्यापत्तेः। अतीन्द्रियाभावेऽतिव्याप्तेश्च। अथ योगि निर्विकल्पकमादाय नोक्तदोषः। न च तत्र मानाभावः। अविशेषणज्ञानत्वेन तत्कल्पनात्। न हि निदिध्यासनाद्यन्यूनानतिरिक्तविषयमेव प्रत्यक्षं येन तस्यैव विशेषणज्ञानत्वं स्यात्। अन्यथा तदुपनीतस्यैव प्रत्यक्षत्वे ज्ञानलक्षणयैवोपपत्तेर्योगजधर्म्मस्य प्रत्यासत्तित्वं न कल्प्येत। समवायाभावयो र्ज्ञानादेश्च सविल्पकमात्रविषयत्वमेव तज्ज्ञानस्य सम्बन्धिज्ञानादिजन्यत्वात्। अतो न सत्यन्तवैयर्थ्यम्। न चाभावेऽतिव्याप्तिरिति चेन्न। अस्तु तावतापि समवायादेः कथं न योगि निर्विकल्पकविषयत्वम्। योगजधर्म्मस्य साधारणत्वात्। न ह्यलौकिकेऽपि तज्ज्ञाने सम्बन्धिज्ञानादिजन्यत्वनियमः। प्रमेयत्वेन तन्निरूपणे तदभावादिति। अत्र वदन्ति। अतीन्द्रियभिन्नगुणत्वाभावसमानाधिकरणसविकल्पकमात्रवेद्यपदार्थविभाजकोपाधिशून्यत्वे तात्पर्य्यम्। विभाजकोपाधिश्च न पदार्थविभाजक एव किन्तु विभाजकमात्र मतो गुणविभाजकज्ञानत्वादिमत्यतिव्याप्तिवारणाय गुणत्वाभावसमानाधिकरणत्वं प्रतियोगिविशेषणम्। समवायत्वादेरतीन्द्रियत्वान्न तत्राव्याप्तिः। सविकल्पकमात्राविषयत्वान्न द्रव्यादावव्याप्तिरिति। वस्तुतोऽसमवायासमवेतमात्रवृत्तिपदार्थविभाजकोपाधितदन्यत्वे तात्पर्य्यम्।

नन्वेतदुभय मभावत्वशून्य एव पर्य्यवसितम्। तथाच तदपेक्षया भावत्वमेव

नन्वेतत् द्वयमप्यभावेऽस्तीति चेत् । अस्तु नेह तदपेक्षया वैधर्म्यमिह विवक्षितम् । अपितु षड़पेक्षया साधर्म्यम् । आश्रितत्व माधेयता स्वाभाविकी । सा च नित्यद्रव्येषु नास्तीत्यत आह । अन्यत्रेति । नित्यद्रव्याणि विहायेदं साधर्म्यमित्यर्थः । ननु समवायेऽप्येतन्नास्ति । न । समवायस्य समवायान्तराभावेऽपि स्वभा-

---

ननु संयोगवृत्त्या नित्यद्रव्याण्यप्याश्रितानि इति तद्व्यावृत्तिरयुक्तेत्यत आह । स्वाभाविकीति । समवायेनेत्यर्थः । समवायस्येति । समवायेऽपि तेनैवाधेयता । किन्तु स्वाभिन्नेनैव विशेषणतायाः स्वरूपसम्बन्धानतिरेकादिति नाव्याप्तिरित्यर्थः । (८९) संयोगान्यवृत्त्या समवायभिन्नभावत्वं वा विवक्षितम् ।

---

लघ्विति तदेवाह । भावत्वं वेति । समवायसम्बन्धत्वं समवेतवृत्तिपदार्थविभाजकोपाधिमत्त्वं वेत्यर्थः । न च प्रथमे समवायेऽव्याप्तिः तत्रापि स्वरूपसम्बन्धस्य समवायात्मकत्वात् । यद्वा द्रव्यादिषट्कान्यतमत्वमित्यर्थः । एवमिति । एतच्चास्मदादिज्ञानाविषयतामभिप्रेत्योक्तम् । अन्यथा ईश्वरज्ञानविषयतायाः सर्व्वदा सत्त्वात् अज्ञायमानतादृशानुपपत्तेरिति ।

(८९) संयोगान्येति । ननु समवायिभिन्नेति व्यर्थम् । समवायेऽव्याप्तिश्चेति चेत् । अत्र समवायपदं प्रत्यासत्तिपरम् । अकारप्रश्लेषेण बहुव्रीहिणा अप्रत्यासन्नभिन्नेत्यर्थः । परमाण्वादावतिव्याप्तिवारणायाद्यपदम् । अभावस्य विशेषणतया प्रत्यासन्नत्वादतिव्याप्तिवारणाय भावपदमित्येके । तत् चिन्त्यम् । नञ् वैयर्थ्यात् । संयोगान्यवृत्त्या प्रत्यासन्नभावत्वमित्येवादोषात् । अपि चेदानी माकाश इति प्रतीतेः काले संयोगान्यवृत्त्याकाशस्य वर्त्तमानतयातिव्याप्तिः । न च वृत्तिपदं साधारण-

वत एव आधारसन्निकृष्टत्वात् । तथाच वक्ष्यामः । चकारान्मूर्त्तत्वं विहाय निष्क्रियत्वम् । अथ समवायात् वैधर्म्म्य मितरेषां साधर्म्म्यमाह । द्रव्यादीनामिति । समवायित्वं समवायलक्षणः सम्बन्धः । अनेकत्वं

---

चकारादिति । समुच्चेयान्तराभावात् अनुक्तसमुच्चयार्थश्चकार इत्यर्थः । निष्क्रियत्वमिति । न च निष्क्रियविनष्टे मूर्त्ते क्रियात्यन्ताभाववत्त्वमित्यतिव्यापकम् । कर्म्मवद्वृत्तिद्रव्यत्वव्याप्यजातिशून्यभावत्वस्येन्द्रियवृत्तिद्रव्यत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिशून्यभावत्वस्य वा विवक्षितत्वात् ।

समवायित्वमिति । यद्यपि समवायित्वं यदि समवेतत्वं तदानित्यद्रव्याव्याप्तिः । समवायाश्रयत्वञ्च सामान्याद्यव्यापकं तयोः

---

वृत्तिपरम् । प्रलये परमाणुरिति प्रतीतेरभावरूपे तत्र तादृशवृत्त्या वर्त्तमानतयातिव्याप्तेरिति वदन्ति । अन्ये तु लक्षणद्वये तात्पर्य्यम् । संयोगान्यवृत्त्या विशिष्टभावत्वमित्येकम् । अपरञ्चाकारप्रश्लेषेणासमवायः समवायावृत्तिक स्तद्भिन्नमित्याहुः । तन्न । प्रथमे उक्तरीत्याकाशाद्यतिव्याप्तेः । द्वितीये नञ्द्वयं व्यर्थम् । तद्विहाय लक्षणे पूर्व्वभेद इति । इतरे तु लक्षणान्तरमिदं किन्तु समवायेनाधेयता न विवक्षिता येन समवायाव्याप्तिशङ्का स्यात् । किन्तु संयोगान्यवृत्त्या संयोगान्यवृत्तित्वेन समवाय स्तद्भिन्नो भावश्च विवक्षितः । स च समवायः स्वरूपसम्बन्धोऽपीति संयोगान्यभाववृत्त्याश्रितत्वं विवक्षितम् । अतो नाव्याप्त्यतिव्याप्ती इति । तदपि चिन्त्यम् । उक्तरीत्याकाशाद्यतिव्याप्तेः । वयन्तु ब्रूमः । संयोगान्यवृत्त्या समवायेन लक्षितः समवायीत्यर्थः । अकारप्रश्लेषेण बहुव्रीहिणा असमवायोऽसमवेत इत्यर्थः । तथाच समवायित्वे सत्यसमवेतं यन्नित्यद्रव्यं तद्भिन्नभावत्वमिति पर्य्यवसितोऽर्थ इति ।

**स्वरूपभेदः। चकारात् समवायादन्यत्वम्। द्रव्यत्वं विहाय पञ्चानामाह। गुणादीनामिति। निर्गुणत्वं गुणाभावविशिष्टत्वं निष्क्रियत्वं क्रियाया असमवायः।**

---

समवेतधर्म्माभावात्। तथापि समवेतवृत्तिपदार्थविभाजकोपाधिमत्त्वं विवक्षितम्। स्वरूपेति। यद्यपि स्वरूपभेदः प्रामाणिकत्वमितरनिष्ठान्योन्याभावप्रतियोगित्वं वा द्वयमपि समवायगतं तथापि स्वाश्रयान्योन्याभावसमानाधिकरणपदार्थविभाजकोपाधिमत्त्वे तात्पर्य्यम्।

गुणाभावो गुणात्यन्ताभावः। क्रिया स्पन्दः तदत्यन्ताभावश्च यद्यपि निष्क्रियनष्टे द्रव्ये दिगादौ चास्ति तथापि कर्म्मवद्वृत्तिसत्ताव्याप्यजातिशून्यभावत्वं विवक्षितम्। समवायेति। सामान्यादौ

---

कर्म्मवद्वृत्तीति दीषतादवस्थ्यमित्यत उक्तं द्रव्यत्वव्याप्येति। व्याप्तिभेदगर्भेति न द्रव्यत्वमादाय दीषतादवस्थ्यम्। जातिपदञ्च गुणवत्त्वमादायातिव्याप्तिनिरासार्थम्। इन्द्रियेति। साक्षात्पदगर्भव्याप्तिसूचनाय। अत्रापि भावत्वं पूरणीयम्। अन्ये तु जातिशून्यत्वं जात्यत्यन्ताभाववत्त्वम्। अभावे वा भावानभ्युपगमाच्च तदपेक्षेत्याहुः।

समवेतवृत्तीति। समवेतत्वं स्वातिरिक्तसमवाये वृत्तिमत्त्वम् अतो न समवायातिव्याप्तिः। पदार्थेति। भावेत्यर्थः। अन्यथा पदार्थो द्विविध इत्यर्थविभाजकोपाधिभूतभावत्वसत्त्वादतिव्याप्तिः स्यादित्यर्थः। पदार्थविभाजकेति। भावविभाजकेत्यर्थः। गुणात्यन्ताभाववत्त्वमित्यत्रात्यन्तपदमन्योन्याभावव्यावर्त्तकम्। सामान्याभावस्यावश्यवाच्यत्वात् प्रागभावादिनिबन्धनातिव्याप्तिशङ्कानवकाश इति वदन्ति।

ननु निष्क्रियत्वमप्रसिद्धं विश्वस्य धात्वर्थरूपक्रियासम्बन्धित्वादित्यत आह। स्पन्द इति। कर्म्मवद्वृत्तीति। साक्षादिदं क्वाचित्कम्। भेदेन व्याप्यत्वबोधनाय

द्रव्यादीनां त्रयाणामिति सत्तासम्बन्धः समवायलक्षणः । सामान्यविशेषा द्रव्यत्वादय स्तद्वत्त्वम् । निरुपपदेनार्थशब्देन द्रव्यादय स्त्रय एवाभिधीयन्ते नापरे । एष एव स्वसमयो वैशेषिकाणां स्वशास्त्रे व्यवहारलाघवाय ।

यथा च धारणाध्यानसमाधि त्रयमेकत्र संयम इति योगानुशासने । द्रव्यादित्रयन्तु प्रत्येकसमुदायाभ्या-

---

चैकार्थसमवाय इति तद्वद्वृत्तिः । तद्वत्त्वञ्च तत्समवायित्वमित्यर्थः । यद्यपि सामान्यवत्त्वमेवेतरभेदगमकं तथापि सामान्यरूपो विशेष इति विग्रहेण जातिमत्त्वमात्र मत्रोक्तम् ।

प्रत्येकेति । सत्तावत्त्वेन प्रवृत्तिनिमित्तेनार्थपद(९०)सङ्केतात् तात्पर्य्यात् क्वचित् त्रितयं तेनोच्यते । क्वचित् प्रत्येकम् । संयमपदस्य तु मिलित एव सङ्केतात् न प्रत्येकवाचकत्वमित्यर्थः ।

---

वृत्त्यन्तम् । गुणाद्यव्याप्तिवारणाय जातिमत्त्वम् । धर्म्मवत्त्वात् गुणाद्यसंग्रह इत्यत आह । जातीति । जातिमत्त्वमात्रमिति । जातिपदार्थनिर्वचने यावदेव व्याप्यं तत्रैव तात्पर्य्यम् ।

(९०) अर्थपदेति । महर्षिकृतार्थसङ्केतादित्यर्थः । एतच्चेच्छामात्रसङ्केतपक्षे । यदि चेश्वरेच्छासङ्केतस्तदा येन पदेनाधुनिकसङ्केतस्तात्पर्य्यवशेन मिलितप्रत्येकतत्तत्पदस्मरणक्रमेण तत्तदर्थोपस्थितिवैचित्र्यं सङ्केतक्रमेण चेत्याहुः । पदार्थेति भावेत्यर्थः । प्रसक्तस्य कलञ्जभक्षणादेः । नापि जातेरिति । यद्यपि जातेर्निर्वृत्तिपक्षेऽपि निवृत्तेरेवादृष्टजनकत्वं स्यान्न जातेरन्यथासिद्धत्वात् । न च निर्वृत्ति-

मिति विशेषः। तदिदमुक्तं स्वसमयेति। धर्म्माधर्म्मकर्त्तृत्वञ्चेति साधर्म्म्यद्वयसूचनाय चकारः। धर्म्मकर्त्तृत्वमधर्म्मं विहाय अधर्म्मकर्त्तृत्वञ्च धर्म्मं विहाय।

---

ननु न सर्व्वगुणसाधर्म्म्यमेतत् धर्म्मस्याधर्म्माहेतुत्वादित्यत आह। धर्म्मकर्त्तृत्वमिति। कर्त्तृपदं निमित्तपरम्। न च धर्म्ममधर्म्मं गुणान्तरं वा यन्न जनयति तदव्यापकत्वम् अधर्म्मान्यत्वे सति धर्म्मजनकत्ववृत्तिपदार्थविभाजकोपाधिमत्त्वमिति विवक्षितत्वात्। धर्म्मान्यत्वे सत्यधर्म्मजनकवृत्तिपदार्थविभाजकोपाधिमत्त्वमिति विवक्षितत्वात्। द्रव्यमदृष्टसाधनं भूमि र्दीयमाना-द्रियमाणा च। गुणो गङ्गाजलचाण्डालसंयोगः। कर्म्म तीर्थयात्रा म्लेच्छदेशगमनञ्च।

ननु जातिविशिष्टस्यैव द्रव्यादे रदृष्टजनकत्वे विशेषणस्यापि जातेस्तज्जनकत्वमित्याह। नन्विति। अदृष्टजनकत्वं श्रुत्येकगम्यम्। सा चासिद्धस्य क्रियमाणस्येष्टसाधनत्वं सिद्धस्य तु व्यापारभागित्वेन तथात्वं। क्वचित् प्रसक्तस्य निवृत्तिः तथात्वेन बोधयति। जातिश्च न स्वरूपतः कार्य्या नित्यत्वात्। नापि व्यापारभागितया

---

व्यापारः। स्वाभावस्य स्वव्यापारत्वायोगात्। तथापि निवृत्तेरप्यदृष्टजनकत्वं न सम्भवतीति प्रसङ्गादुक्तम्। न त्वस्य प्रकृतोपयोग इति। विहितेतीति। यद्यप्यरुणयैकहायन्येत्यादिस्थले रूपस्यासिद्धत्वेनाव्यापारत्वात् गुणस्य जन्यधर्म्मानाश्रयत्वेनाव्यापारित्वाच्चैव हेतुता स्यात्। तथापि साक्षात्परम्परासाधारणव्यापारभागित्वं बोध्यम्।

ननु जात्यादीनां कथं नैतत्। उच्यते। विहित निषिद्धभावनाविष्टानां हि तद्धेतुत्वं न स्वरूपतः।

न च भावनाविशेषो जात्यादिषु स्वरूपतो द्रव्यादिक मनन्तर्भाव्य सम्भवति नित्यत्वेनाव्यापारत्वात्। अनित्यधर्म्मायोगेनाव्यापारितत्वात्।

न च ज्ञानमात्रेण तेषां तदुपयोगोऽभियोगवदनिषेधात्। तस्मात् स्वाश्रयावच्छेदकमात्रेणैवोपयुज्यते

---

जन्यधर्म्मानाश्रयत्वात्। नापि जाते र्नित्यतया निवृत्तिरिति नादृष्टजनकत्वमित्याह। विहितेति।

ननु जाते र्यद्यपि भावनाविषयत्वात् भाव्यत्वेन नादृष्टं प्रत्युपयोगः। तथापि भावनाविषयत्वावच्छेदकत्वेनोपयोगः स्यादित्यत आह। न चेति।

अभियोगो विधिः। अदृष्टजनकत्वस्य श्रुत्येकगम्यत्वात् यथा-श्रुति र्जाते र्व्विधिं न प्रतिपादयति तथा निषेधमपीत्यर्थः। (६१) ज्ञानावच्छेदकत्वेन विषयस्य कारणत्वं न सिद्ध्यति तस्य ज्ञानमात्र एवोपक्षयात्। विशेष्यसमवाययोश्चादृष्टजनकत्वे मानाभाव

---

(६१) ज्ञानावच्छेदकत्वेनेति। इष्टसाधनताज्ञानविषयतावच्छेदकत्वेनेत्यर्थः। विशेषेति। यद्यपि ज्ञानकृत्यादिसामानाधिकरण्यस्यादृष्टजनकत्व मन्यथा अज्ञानकृते प्रायश्चित्तभेदानुपपत्तिरिति समवायस्याप्यदृष्टजनकता तथाप्यदृष्टजनकतावच्छेदकावच्छिन्नत्वं विवक्षितम्। न च तदवच्छिन्नः समवाय स्तावन्मात्रविश्रान्ताव-

इति । कार्य्यत्व मभूत्वाभावित्व मनित्यत्वं भूत्वा अभा-
वित्वं विवक्षितम् । अन्यथा कारणवतामेवेति नियमो न स्यात् । तदनपेक्षान् विहायेत्येवकारार्थः । कारणत्वञ्च ज्ञातृधर्म्मेतरकार्य्यापेक्षया । अन्यथा न पारि-

---

इत्यर्थः । नियोगवदिति पाठे नियोगोऽपि विधिरित्यर्थः । कार्य्यत्वं यदि प्रागभावप्रतियोगित्वमनित्यत्वञ्च ध्वंसप्रतियोगित्वं विवक्ष्येत तदा ध्वंसप्रागभावातिव्याप्तिरिति व्याचष्टे । अभूत्वेति । उभयत्रापि सत्तावत्त्वेन विशेषणात् नोक्तदोष इत्यर्थः । अन्यथेति । यदि तेन न विशेष्येत यदि वा भवनमात्रं विवक्ष्येत तदा प्रागभावे नित्ये च तत्त्वात् कारणवतामेवेति लक्ष्यनिर्द्देशो नोपपद्येतेत्यर्थः ।

ननु ज्ञानादिकं प्रति सामान्यादीनामपि कारणत्वमस्त्येवेत्यत

---

च्छेदकानङ्गीकारात् किन्तु विशिष्टवृत्त्येवावच्छेदकमित्याहुः । तदा ध्वंसेति । यद्यपि ध्वंसः कारणं वा नवेति तस्य संग्राह्यत्वात् नातिव्याप्ति स्तथापि त्रयाणामित्यनुवृत्त्या त्रयस्यैव लक्ष्यत्वमिति भावः । सत्तावत्त्वेनेति । यद्येतद्विशेषणपूरणे यथाश्रुतमपि सम्यगेवेत्यभूत्वाभावित्वमित्यादिव्याख्यानमयुक्तम् । तदपूरणे तूक्ताव्याप्तितादवस्थ्यमेव तथापि भावः सत्तेत्यभूत्वा प्रागभावप्रतियोगीभूय भावित्वं सत्तायोगित्वं भूत्वा सत्ताविशिष्टीभूयाभावित्वं विनाशित्वमित्यर्थः ।

तेनेति । सत्तावत्त्वेनेत्यर्थः । यदि चेति । सत्तावत्त्वमात्रं यदि विवक्ष्येतेत्यर्थः । तदेति । एतच्च सत्तावत्त्वे सति नाशित्वमित्यत्र प्रागभावप्रतियोगित्वे सति सत्तावत्त्वमित्यत्रान्यतरमात्रविवक्षायां ध्वंसे नित्ये च व्योमादौ गतत्वादित्यादि बोध्यम् । कारणवतामिति । त्रयाणामिति शेषः ।

माण्डल्यादिव्यवच्छेदः । त्रयग्रहणञ्च नोपपद्यते । पारिमाण्डल्यं परमाणुपरिमाणम् । आदिग्रहणात् परममहत्त्वं, अन्त्यावयविरूपरसगन्धस्पर्शपरिमाणानि,

---

आह । ज्ञातृधर्म्मेति । अन्यथेति । यद्यपि योगिप्रत्यक्षस्य विषयाजन्यतया पारिमाण्डल्यमपि न (९२) ज्ञातृधर्म्मजनकं तथाप्यतद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहिणादिपदग्राह्याणामस्मदादिप्रत्यक्षजनकत्वात् ते व्यवच्छेद्या द्रष्टव्याः । योगिप्रत्यक्षमपि विषयजन्यमिति केचित् । त्रयग्रहणञ्चेति । अत्र त्रयाणाम् इत्यनुवृत्तेः त्रयस्यैवैतत्साधर्म्यं तच्च सामान्यादेरपि ज्ञानकारणत्वात् कारणत्वमात्रविवक्षायां नोपपद्यते । न चाग्रे सामान्यादेरकारणत्वमेतद्वैधर्म्यं स्यादित्यर्थः ।

आदिग्रहणादिति । नन्वयं विरूपादीनामपि स्वध्वंसकारणत्वादभिघातं प्रति स्पर्शस्य कारणत्वात् तथा परमाणुद्वित्वस्य द्व्यणुकपरिमाणजनकत्वात् न तेषां व्यवच्छेद्यत्वम् । संस्कारस्य चरमत्वं विशेषणमयुक्तम् । भावनात्मकस्य तस्य सर्व्वस्यैव ज्ञातृधर्म्मेतरकार्य्याजनकत्वात् । अत्राहुः । ज्ञातृधर्म्मेतर-

---

सामान्यादीनामिति । यद्यपि विशेषसमवाययोरतीन्द्रियतया न ज्ञानजनकत्वं तथापि मूलोक्तादिपदग्राह्या ऐन्द्रियका अनेन संगृहीता इत्येके । सामान्यमात्र एव तात्पर्य्यमित्यन्ये । ज्ञायमानकारणतापक्षे लिङ्गविधतया तयोरपि तज्जनकत्वमित्यप्याहुः ।

(९२) न ज्ञातृधर्म्मेति । ज्ञायमानकारणत्वमतमभ्युपेत्येदम् । आदिपदग्राह्याणामिति । ऐन्द्रियककारणमिति शेषः । केचिदित्यस्वरसोद्भावनम् । तद्बीजन्तु अतीतादिगोचरप्रत्यक्षे व्यभिचाराच्च तस्य विषयजन्यत्वम् । न च विद्य-

द्वित्वद्विपृथक्त्वपरत्वापरत्वानि, विनश्यदवस्थद्रव्यनिष्ठ-संयोगविभागकर्म्माणि, अन्त्यः शब्दः, चरमसंस्कारो ज्ञानञ्च गृह्यते।

द्रव्याश्रितत्वञ्च द्रव्यसमवायिकारणकता। एवं द्रव्यत्वादिसामान्यविशेषपदार्थयोरप्रसङ्गः। तथाप्य-

---

कार्य्यापेक्षयेत्यत्र कार्य्यपदेन प्रागभावावच्छिन्नसत्तायोगित्वमत्र विवक्षितम्। स्पर्शपदञ्च स्पर्शसमानाधिकरणं परिमाणमिति मध्यमपदलोपिसमासेन स्वसहवृत्तिपरिमाणोपलक्षणं द्वित्वञ्चा-न्त्यावयविवृत्तिपरिमाणाजनकं विवक्षितम्। चरमपदन्तु भावना-परिचर्य्यार्थमेवोपात्तम्। ज्ञातृगुणेषु तस्याश्चरमपाठात्। ज्ञान-मपि मोक्षाव्यवहितप्राक्कालवृत्त्यत्रोपसंख्येयम्। यद्यप्यन्त्यावयवि-रूपादीनामपि असमवायिकारणजातीयत्वमस्त्येव तथापि व्यक्त्य-भिप्रायेणाजनकत्वव्युत्पादनम्।

द्रव्याश्रितत्वं द्रव्यसमवेतत्वं सामान्ये विशेषे च गतमित्यन्यथा

---

मानविषयकप्रत्यक्षविशेषे तद्धेतुत्वम्। अतीतागोचरप्रत्यक्षवद्‌ योगजधर्म्मादिनैव तदुपपत्तौ तत्र मानाभावादिति। द्वित्वञ्चेति। अत्रान्त्यावयविवृत्तीति पदं प्रामा-दिकमित्यन्ये। अन्त्यपदं प्रामादिकम्। अवयविपरिमाणाजनकमित्यर्थः। इत्यन्ये। एतदुपलक्षणम्। बहुत्वाद्यपि परिमाणाजनकमन्त्यावयव्येकत्वैक-पृथक्त्वादिकमपि बोध्यम्। ज्ञानमपीति। अन्यज्ज्ञानस्य घटादिजनकत्वादिति भावः। मोक्षेत्युपलक्षणम्। निर्विकल्पकेत्यपि द्रष्टव्यम्। व्यक्त्यभिप्रायेणेति। तथाच कारणत्वं फलोपहितत्वम्। एवं यद्यत् फलानुपहितं तत्तदा पदस्याह्यमेवेति भावः।

व्यापकमत आह । अन्यत्रेति । नित्यद्रव्येत्युपलक्षणम् । नित्यगुणेष्वपि द्रष्टव्यम् । नित्यद्रव्याणि नित्यगुणांश्च विहायेदं त्रयं साधर्म्म्यमित्यर्थः । आद्यसंयोगविभागौ नित्यवर्गश्च विहाय गुणासमवायिकारणता चेति चार्थः । सामान्यादीनामिति । स्वात्मसत्त्वं सत्ताविरहः । बुद्धिलक्षणत्वं बुद्धिमात्रममीषां लक्षणं

---

व्याचष्टे । द्रव्येति । समवायिकारणत्वमित्यर्थः । द्रव्येति स्वरूपनिर्व्वचनमितरसमवायि(८३)व्युदासार्थं वा । आद्याविति कर्म्मजौ चकारादत्र कर्म्मजन्याद्यवेगोऽपि द्रष्टव्यः ।

बुद्धिमात्रमिति । ननु यदि प्रमाणं प्रमा तदा द्रव्याद्यतिव्याप्तिः । तेषामपि बुद्धेः प्रमात्वात् । अथ प्रमाकरणं तन्न चक्षुरादेरपि तत्त्वात् । अथानुवृत्त्यादिबुद्धित्रितयान्यतमपरं बुद्धिपदं तथापि संयोगेऽतिव्याप्तिः । एतेन प्रत्यक्षमध्येऽवधारणमिदं प्रत्यक्षमेवात्रेदृक् प्रमाणम् नान्यदृशमिति निरस्तम् । विशेषसमवाययोस्तदभावात् । बुद्धिपदस्य निःसामान्यत्वप्रकारकभावविषयकप्रमिति-

---

(८३) इतरसमवायीति । द्रव्यस्यैव समवायिकारणत्वमिति बोधनार्थमेवेत्यर्थः । ननु सकलाद्यत्वमसम्भवीति यत्किञ्चिदाद्यत्वं संयोगजसंयोगादेरपीति व्याचष्टे । कर्म्मजाविति । कर्म्मजन्येति । एतच्चाद्यत्वविवरणं अन्यथाद्यपदवैयर्थ्यापत्तेरिति ध्येयम् । चक्षुरादेरिति । यद्यपि विशेषसमवायौ न प्रत्यक्षौ तथाप्यलौकिकप्रत्यक्षे तथात्वमस्त्येवेति भावः । ईदृगिति । अनुवृत्त्यादिबुद्धिरूपमित्यर्थः । प्रमाणमिति । प्रमेत्यर्थः । तदभावादिति । अतीन्द्रियजातावपि बोध्यम् । इदन्तु लौकिकप्रत्यक्षाभिप्रायेणोक्तम् । निःसामान्येति । तदंशे तादृश-

प्रमाणम्। ननु द्रव्यादिवत्प्रमाणान्तरमस्तीत्यर्थः। अनुवृत्तबुद्धि व्यावृत्तबुद्धिरिहेति बुद्धिरित्येव सामान्यादित्रये प्रमाणमिति। अकार्य्यत्वमनादित्वम्। कथमिति चेत्। अन्यथा स्वरूपव्याघातात्। सामान्यस्य हि

---

परतया तद्विषयस्यानुगतबुद्ध्याद्यन्यतमबुद्धिषु यदसाधारणं तत्त्वस्य वा विवक्षितत्वात्। अकार्य्यपदे बहुव्रीहिनिरासायाह। अनादित्वमिति। तच्च यद्यप्यकारणत्वं प्रागभावाप्रतियोगित्वं वा द्वयमपि नित्यद्रव्यादावतिव्याप्तं तथाप्यादिमदवृत्तिपदार्थविभाजकोपाधिमत्त्वे तात्पर्य्यम।

स्वरूपव्याघातमेवाह। सामान्यस्य हीति। भावकार्य्यस्य समवायिकारणजन्यत्वनियमादित्यर्थः। तदुत्पत्तीति। समवायिकारणनाशे समवेतकार्य्यनाशनियमादित्यर्थः। सामान्यरूपतामिति। प्रागुत्पन्नेदानीमुत्पन्नघटत्वयोः प्रागुत्पन्नत्वेदानीमुत्पन्नत्व-

---

प्रमितिविषयत्वं बोध्यम्। अतो न समूहालम्बनमादायातिव्याप्तिः। न च निःसामान्यभावमित्येवास्त्विति वाच्यम्। यथोक्तविशेषणविशेष्यभावे दोषाभावात्। यदसाधारणमिति। नन्विह कुण्डे वदरमिति बुद्धिमादाय संयोगे इह घटाभाव इति बुद्धिमादायाभावेऽतिव्याप्तिरिति चेन्न। अयुतसिद्धसम्बन्धिविषयकत्वेन तद्बुद्धेर्विशेषणात्। यद्यपि विशेषणस्यातीन्द्रियनिष्ठतया तन्निष्ठव्यावृत्तिबुद्धौ न तस्य हेतुत्वं तथापि निमित्तपदं प्रयोजकपरमित्येके। योगिज्ञानाभिप्रायेणैतदुक्तमित्यन्ये। प्रागुत्पन्नेत्युपलक्षणं व्यक्तिभेदादपि न तथात्वमित्यपि बोध्यम्।

आवश्यकत्वादिति। तथाच समवायिकारणनाशात् तन्नाशे तदनन्तरं तद्व्यवहारो न स्यात्। पुनस्तदुत्पादे पूर्व्व एव दोष इति भावः। विशिष्टानीति मूलं विशेषवन्तीत्यर्थः।

कार्य्यत्वे व्यक्तिरिव समानाधिकरणा स्यात्। तथाच तदुत्पत्तिविनाशयोः जात्युत्पत्तिविनाशे प्रतिव्यक्तिभिन्नं सत् सामान्यरूपतां जह्यात्।

अभेदे तु व्यक्तेः पूर्व्वमपि सत्त्वात्। न तत्कारणकं स्यात्। एवं पूर्व्वपूर्व्वतरपूर्व्वतमादिव्यक्तिभ्योऽपि प्राक् सत्त्वात्। अनादित्वं सामान्यस्यान्यथा स्वरूपव्याघात इति। नित्यद्रव्याणाञ्च कदाचिद्विशेषाभावे व्यावृत्तिरपि निवर्त्तताम्। तथाच द्रव्यसङ्करः स्यात्। न च स्वभावसाङ्कर्य्ये पुनरसाङ्कर्य्यं स्वभावपरावृत्तिप्रसङ्गात्। ततः सर्व्वदैवासङ्कीर्णत्वात् सर्व्वदैव

---

लक्षणविरुद्धधर्म्माध्यासाद् भेदेऽनुगतत्वाभावात् सामान्यरूपमेव तन्न स्यादित्यर्थः। न च सर्गाद्यकालीनघटादिव्यक्तिजन्यमेव घटत्वादिकमिदानीं व्यक्त्यन्तरेणापि व्यज्यते पूर्व्वकल्पान्तरेऽपि तन्निमित्तघटादिव्यवहारोऽसिद्ध एवेति वाच्यम्। सर्गाद्यकालीनघटादिनाशे तन्नाशस्याप्यावश्यकत्वात्। अन्यसमवेतकार्य्यस्यान्यासमवेतत्वात्।

नित्यविशेषाणामनादित्वमुपपादयति। नित्यद्रव्याणामिति। व्यावृत्तिरपीति। व्यावृत्तेरन्योन्याभावस्य वैधर्म्म्यानियतत्वेन तदभावे सापि न स्यादित्यर्थः। सङ्करस्तादात्म्यम्। न चेति। प्रथमं तादात्म्ये पश्चाद्विशेषोपपत्तौ भेदः स्यादिति न सम्भवति।

विशिष्टानीत्यनादय एव विशेषाः। समवायोऽपि निःसमवायः कथं समवायिकारणं विना भवेत्। भवन् वा कथं न कार्य्यान्तरमर्य्यादामतिक्रामेत्। कथञ्चोत्पन्नो विनश्येत्। तथाच कथमुत्पद्येतापि। भावस्याविनाशिनोऽनुत्पत्तेः। समवायान्तराभ्युपगमे च कथमनवस्थां नापादयेत्। कथं वा पश्चादुत्पद्य-

---

अन्योन्याभावस्य सदातनत्वादित्यर्थः। समवायोऽपीति। (८४) समवायो यदि भावत्वे सति कार्य्यः स्यात् समवायिकारणं विना न स्यादिति भावः। वेति। भावकार्य्यान्तरस्य मर्य्यादामतिक्रामेदित्यर्थः।

कथञ्चेति। कार्य्यनाशस्य समवाय्यसमवायिनाशजन्यत्वनियमादित्यर्थः। न च द्वित्ववन्निमित्तनाशात् तन्नाशः स्यात्। रूपादिसमवायस्य दण्डादिनिमित्तकत्वेन तन्नाशेऽप्यनाशात्। अदृष्टनाशस्य चासिद्धेः। नापि सम्बन्धिनाशकनाश्यः। अग्निसंयोगान्नीलरूपं नष्टमिति प्रतीतेः। समवायो नष्ट इत्यननुभवात्। तर्हि समवेत एवास्तु समवाय इत्यत आह। समवायान्तरेति। पश्चादिति। सम्बन्धिभ्यामिति शेषः। किञ्च सम्बन्धिनो

---

(८४) ध्वंसे व्यभिचारादन्यथा व्याचष्टे। समवायो यदीति। ननु समवायो भावत्वे सति कार्य्यः समवायिकारणं विना जायमानत्वादित्यमस्य पर्य्यवसानं वाच्यम्। तथाच स्वनये स्वरूपासिद्धिरिति चेन्न। परमतमवलम्ब्योक्तत्वादि-

मानः संयोगलक्षणप्राप्तिश्च स्वभावं न जह्यात् । अप्राप्तिपूर्व्विका प्राप्तिरिति हि तत् नित्यसम्बन्धिषु तथानभ्युपगमाच्चेति ।

तस्मात्सुष्ठूक्तं सामान्यादीनां त्रयाणामकार्य्यत्व-

---

नित्यत्वे समवायस्यानादित्वस्थितावनित्यसम्बन्धिनोऽपि तस्य नित्यत्वमनुमेयमित्याह । नित्येति । न च सम्बन्धत्वावच्छिन्नसाध्यव्यापकं नित्यसम्बन्धित्वमुपाधिः । लाघवादेकस्यैव समवायस्य सिद्धौ साधनव्यापकत्वात् ।

अपरेति । अपरेत्युपलक्षणम् । सामान्यविरुद्धस्यैवेतरवैधर्म्म्यम-

---

त्येके । वस्तुतः समवायिजन्यः स्यादित्यापाद्य मेवञ्च विपर्य्यये समवायिकारणाजन्यत्वस्य नासिद्धमिति बोध्यम् ।

भावेति । यद्यपि गुणादिनिष्ठशक्तेः समवायिकारणं विनाप्युपपत्तिः परेण स्वीक्रियत एव तथापि स्वमतावष्टम्भेनेदम् ।

ननु जातिमत्कार्य्यस्य समवायिकारणजन्यत्वनियमो नतु भावकार्य्यस्य । समवायस्य च समवायान्तरस्वीकाराच्च जातिरिति । तद्विनापि तदुत्पत्तावविरोध इति चेन्न । धर्म्मिग्राहकमानेन लाघवादेकसमवायसिद्धौ तन्नित्यत्वसिद्धेरिति ।

द्वित्ववदिति । तथाचोक्तनियमे व्यभिचार इति भावः । असिद्धेः कार्य्यनाशकत्वासिद्धेः गौरवादन्यथा सर्व्वत्रैव तन्नाशादेव तन्नाशः स्यात् आकाशादेरथैव मनित्यत्वं स्यादिति भावः । समवाय इति । यद्यपि वैशेषिकनये समवायस्यातीन्द्रियतया न ध्वंसो न प्रत्यक्षस्तथापि न्यायनयेनेदम् । अनुमितिरूपप्रतीत्यभिप्रायेणोक्तमित्यन्ये । नित्यत्वं साध्यं व्योमादौ न च तत्रोपाधिरिति साध्याव्याप्तेराह । सम्बन्धत्वावच्छिन्नेति । साधनेति । समवायत्वस्वरूपसाधनव्यापकत्वादित्यर्थः । सामान्यविरहस्येति समवेतधर्म्मविरहमात्रे तात्पर्य्यमित्याहुः ।

मिति । अकारणत्वमनात्मधर्म्मापेक्षया असामान्यविशेषवत्त्वं अपरसामान्यविरहः । स च सामान्येष्वनवस्थानात् विशेषेष्वपि सामान्यसद्भावे गुणत्वापत्तौ पुनः सामान्यगुणेषु विशेषान्तरापेक्षायामनवस्थानादेव। समवायस्यैकत्वाच्च समवायान्तरापेक्षयानवस्थानाच्चेति। नित्यत्वमनन्तत्वम् । तच्चाकार्य्यत्वात् । अनित्यत्वं हि कार्य्यतया व्याप्तं साच सामान्यादिभ्यो व्यावर्त्तमाना स्वव्याप्य मनित्यत्व मुपादाय निवर्त्तते। अकार्य्यमपि हि

---

रूपत्वात् । अनवस्थानादिति । (९५) सामान्यं यदि सामान्यवत् स्यात् द्रव्यादित्रयान्यतमत् स्यादिति । तद्भिन्नसामान्याव्यवस्थैवानवस्थेत्यर्थः । ततो नाप्रसिद्धिः । एवं विशेषादावपि । गुणत्वेति । विशेषो यदि कर्म्मान्यः कार्य्यानाश्रयश्च सन् सामान्यवान् स्याद् गुणः स्यादित्यर्थः । अनन्तत्वं ध्वंसाप्रतियोगित्वम् । न चैतद्व्योमादावतिव्याप्तम् । अनित्यावृत्तिपदार्थविभाजकोपाधिमत्त्वस्य विवक्षितत्वात् । तच्चेति । प्रागभावाप्रतियोगिनो भावस्यानन्तत्वादित्यर्थः । तदभाव इति । निरवयवपरमाण्वादिनाशे निराश्रयकार्य्यं नोत्पद्येत । सामान्याद्यभावे च तत्तज्जातीय-

---

(९५) नन्वनवस्थापादनमुत्तरोत्तरधर्म्मापादनमेव तच्चाप्रसिद्धे र्न सम्भवतीत्यत आह । सामान्यं यदीति । द्रव्ये कर्म्मणि च व्यभिचारादाह । विशेषो यदीति । एवञ्च समानजातीयत्वेऽत्यन्तव्यावृत्तबुद्धेरेव न स्वाश्रयव्यावृत्तत्वमन्तरेण तस्यैव

यद्याकाशपरमाण्वादि सामान्यादि वा निवृत्तं स्यात् । पुनस्तन्न स्यात्कारणाभावात् । ततस्तदभावे निराश्रयं किञ्चिदपि न स्यादिति । अर्थशब्दानभिधेयत्वं स्वसमयार्थशब्दानभिधेयत्वम् । चकारात्कारणानपेक्षत्वमिति । उपलक्षणञ्चैतत् । अन्यदप्यूह्यम् ।

तद्यथा—अनित्यधर्म्मत्वमविशेषाणामेव । नित्यत्वमकर्म्मणामेव । अयोगिप्रत्यक्षत्वं द्रव्यादीनां चतुर्णा-

---

कार्य्यानुत्पत्तिः । पुनस्तदुत्पत्तौ कारणाभावादित्यर्थः । विनाशहेतुरपीति भावः । कारणेति । अत्रापि कारणवन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगिविभक्तोपाधिमत्त्वमभिप्रेतम् ।

अनित्यधर्म्मत्वमिति । यद्यप्येतदवृत्तिर्व्योमादौ नित्यवृत्तिशब्दादौ चाव्यापकं तथापि नित्यमात्र (९६) धर्म्मावृत्तिविभक्तोपाधिमत्त्वे तात्पर्य्यम् । नित्यत्वमिति । नित्यवृत्तितद्विभाजकोपाधिमत्त्वमित्यर्थः । अयोगीति । यद्यप्येतद्व्योमाद्यव्यापकं तथा-

---

व्यावृत्तत्वानुपपत्तेः । विशेषस्यापि धर्म्मिग्राहकमानेन स्वव्यावर्त्तकत्वाच्च दोष इति भावः । व्योमाद्यतिव्याप्तेराह । अत्रापीति । सकलकारणवन्निष्ठेत्यर्थः । विभक्तेति । साक्षाद्भावविभाजकोपाधिमत्त्वमित्यर्थः ।

(९६) नित्यमात्रेति । न चाकाशवृत्तिशब्दवृत्तिगुणत्वमादाय गुणेऽव्याप्तिरिति वाच्यम् । नित्यवृत्तित्वानवच्छेदकभावविभाजकोपाधिमत्त्वस्य नित्यधर्म्मावृत्तिभावविभाजकोपाधिमत्त्वस्य वा विवक्षितत्वात् । अयोगीति । लौकिकप्रत्यक्षेत्यर्थः ।

कार्य्यकारणभावेति । कार्य्यकारणभावरूपो यः सम्बन्धः तन्निरूपकसम्बन्धि

मेव । असमवायिकारणत्वं गुणकर्म्मणोरेव । असमवेतत्वं नित्यद्रव्यसमवाययोरेवेति ।

इदानीं द्रव्याणामेव साधर्म्यं वैधर्म्यञ्चाह । पृथिव्यादीनामिति । कियतामित्यत आह । नवानामपीति । अपिरभिव्याप्तौ । द्रव्यत्वयोगो द्रव्यसमवायः । द्रव्यत्व-

---

प्ययोगिवृत्तिविभक्तोपाधिमत्त्वं विवक्षितम् । असमवायीति । कार्य्यकारणभावसम्बन्धनिरूपकसम्बन्ध्येकार्थसमवायनिरूपितकारणत्वयोगित्वमसमवायिकारणत्वं तद् यद्यपि न सकलगुणकर्म्मव्यापकं तथाप्यसमवायिकारणवृत्तिविभक्तोपाधित्वं विवक्षितम् । असमवेतत्वं समवायवृत्त्यनाधेयत्वमित्यर्थः । उपलक्षणेति । उपलक्ष्यते व्यज्यते अनेनेत्युपलक्षणम् । जात्यभिव्यक्तिस्तन्नियमबोध-

---

कार्य्यं कारणञ्च तन्निरूपकसम्बन्धित्वेन तयोरनुगमात् । तदेकार्थसमवायित्वेन निरूपितं यत्कारणत्वं तद्योगित्वमित्यर्थः । तथाच तत्सम्बन्धनिरूपकसम्बन्धि यद्घटात्मकं कार्य्यं तदेकार्थसमवायित्वेन निरूपितं कपालद्वयसंयोगस्य कारणत्वम् । एवं घटरूपं प्रति घटस्य कारणतया तत्सम्बन्धनिरूपकसम्बन्धि यद्घटात्मकं कारणं तदेकार्थसमवायित्वेन निरूपितं कपालरूपस्य कारणत्वमिति तयोरसमवायिकारणत्वमिति ।

ननु सम्बन्ध्यन्तं व्यर्थमिति चेन्न । स्वरूपकथनपरत्वादित्याहुः । तथैव कारणतावच्छिद्यत इति न वैयर्थ्यमित्यन्ये ।

ननु सुखं प्रत्यदृष्टस्य स्मृतिं प्रति संस्कारस्य ज्ञानं प्रतीच्छादेरभिघातं प्रति स्पर्शादेरेकार्थसमवायित्वेन जनकत्वादतिव्याप्तिः । न चात्र समानाधिकरणत्वेन तथात्वं नतु समवायित्वेन गौरवादिति वाच्यम् । कपालद्वयसंयोगादेरपि

मित्येतावति वक्तव्ये योगग्रहणमुपलक्षणनियमार्थम्। अपरिच्छिन्नदेशत्वात् सामान्यसमवाययोः कथमत्रैवेदं नान्यत्रेति प्रत्यय इति केचिच्चोदयन्ति। तत्रेदमत्रैव

---

नार्थमित्यर्थः। तदपि यदर्थं तदाह। अपरिच्छिन्नेति। सामान्यस्यानियतदेशत्वात् समवायस्यैकत्वादित्यर्थः। न च द्रव्यत्वस्यात्यन्ताभावो यत्र नास्ति तत्र द्रव्यत्वमिति वाच्यम्। अभावाभावस्य भावतयानन्वयापत्तेरिति भावः।

अभिव्यञ्जयेदिति। नन्वभिव्यक्तिर्न साक्षात्कारः। समवायस्यातीन्द्रियत्वात्। नाप्यनुमितिः व्यक्तिं विनापि द्रव्यत्वस्य (९७) जातित्वेन समवायानुमानात्। अत्राहुः गुणस्यात्यन्ता-

---

तथात्वापत्तेरिति चेन्न। पारिभाषिकोक्तासमवायिकारणत्वस्य तत्रापि सत्त्वे दोषाभावात्। गुणकर्मसाधर्म्यनिरुक्तेस्तावतापि सिद्धेः। यदा स्वसमवायिकारणपदप्रवृत्तिनिमित्तनिरुक्तौ प्रस्तावस्तदा तत्तदन्यत्वविशेषितमिदमेव बोध्यम्। अतएव गुणप्रकाशे आत्मविशेषगुणान्येति विशेषणं दत्तम्। न च तत्रापि तद्व्यर्थं लाघवेनास्यैव तत्प्रवृत्तिनिमित्तत्वादिति वाच्यम्। अदृष्टादौ कस्यचिदपि तथा व्यवहाराभावेन गौरवस्य प्रामाणिकत्वात्। अतएव प्रमापदप्रवृत्तिनिमित्तं अनुभवत्वगर्भं स्मृतौ तद्व्यवहारादिति दिक्।

समवायेति। स्वातिरिक्तसमवायेत्यर्थः। भावत्वमपि बोध्यम्। सामान्यस्येति। अन्यथा घटस्य तत्तद्देशगमने घटत्वोपलम्भानुपपत्तिः तस्य क्रियाविरहादिति भावः। समवायस्येत्यत्र वैशेषिकनये इति शेषः।

(९७) जातित्वेनेति। ननु जातित्वं व्यक्तिगर्भमिति तत्रापि न व्यक्तिं विना तज्ज्ञानमिति चेन्न। द्रव्यत्वस्य समवेतत्वे साध्ये तस्य लिङ्गत्वात्। लिङ्गोपहितभानस्य चानभ्युपगमात्। ननु पक्षीभूतद्रव्यत्वस्य समवेतत्वे भानाद्दोषतादवस्थ्यं

द्रव्यत्वं वर्त्तते नान्यत्र यत इत्युच्यते। अयमेव हि द्रव्यत्वस्य स्वभावो यदेतत्समवाय मभिव्यञ्जयेदेताभि र्व्यक्तिभिः सह न रूपादिव्यक्ति गुणत्वञ्च रूपादिव्यक्ती-रादाय पृथिव्यादिव्यक्तीरित्यादि वक्ष्यते।

---

भावो यत्र नास्ति तत्र द्रव्यत्वं वर्त्तते। अत्यन्ताभावस्य यद्यपि प्रतियोग्येव स च नोत्पत्तिकाले तथापि प्रध्वंसप्रागभावयोरप्य त्यन्ताभावाभावरूपत्वम्। अत्यन्ताभावाश्रयत्वमेव प्रतियोगितद्ध्वंस-प्रागभावानामनुगमकम्। अत्यन्ताभावश्च क्वचिदस्ति क्वचिन्नेत्य धर्म्मिस्वभाव एव नियामकः। यद्वा समवायस्यैकत्वेऽपि धर्म्मिता-धीन एव विशेषः। स च विशेषणताविशेषरूपो नान्यत्र।

---

इति चेन्न। द्रव्यपदस्य प्रवृत्तिनिमित्तत्वादिना पक्षत्वात्। व्यक्तेः पृथिवीत्वादिना विशेषरूपेणाभानमित्यन्ये। नोत्पत्तिकाल इति। यद्यपि व्यञ्जकगुणवत्त्वस्य कदाचित् सत्त्वादेव जातिव्यवस्थितौ न दोषस्तथापि यदा यत्र व्यञ्जकं वर्त्तते तदैव तद्वद्धर्म्मित्यभ्युपगमेन ध्वंसादिसाधारणं तन्निर्वचनम्।

यत्तु लक्षणाभिप्रायेणेदम्। तथाचाद्यक्षणेऽव्याप्तिवारणाय तदिति। तच्चि-न्त्यम्। कदाचित् तत्सत्त्वेन तदभावादित्याहुः। अनुगमकमिति। ननु तद-भावाभावत्वमेव वानुगमकमिति व्यर्थमिदमिति चेत्। अत्राहुः। गुणादिसाधा-रणमभावत्वं विरोधित्वमेव वाच्यम्। तदेव किमित्याकाङ्क्षायामिदमुक्तमिति। यद्यपि गुणात्यन्ताभावासमानाश्रयत्वं पृथिवीत्वादावप्यस्ति तथापि तद्गतत्वेऽपि नातिव्याप्त्यादिदोष इति कृत्वा तथोक्तमित्याहुः। एतदप्यनुगतव्यञ्जकाभ्युपगम-पक्षे। वस्तुतो व्यञ्जकस्याननुगमेऽप्यदोषः। प्रत्युत तदनुगतत्वेनैवान्यथासिद्धौ जात्य-सिद्धिरिति। केचित्तु अत्यन्ताभावाभावत्वमेव प्रतियोगित्वम्। ध्वंसप्रागभावयोरपि तत्प्रतियोगित्वात्। एवञ्च तत्प्रतियोगितावच्छेदकमनुगतमुक्तमिति वदन्ति।

द्रव्यत्वमेव नास्ति गोत्वादिवदनुपलब्धिरिति केचित् । नाकार्य्याश्रयतोपलक्षणेन साधर्म्म्यणाभि-

---

द्रव्यत्वमेवेति । ननु साधनविकलो दृष्टान्तः । न च व्यतिरेकि दृष्टान्तः । (६८) अप्रतीतप्रतियोगिकस्याभावस्यानिरूपणात् । न । द्रव्यत्वं तावत् उभयसिद्धं न जातिरुपाधिर्वेति विवादः । द्रव्यत्वं न जातिः । अनुगतत्वेनाप्रतीतेः । व्यतिरेकेण गोत्ववदित्यर्थात् । पृथिव्यादिनवकं न पृथिवीत्वादिभिन्नसत्तासाक्षाद्व्याप्यजातिमत् तद्वत्तयानुपलभ्यमानत्वात् । अन्वये दृष्टान्तो गोत्वमित्यन्ये ।

कार्य्याश्रयतेति । कार्य्यमात्रं प्रति समवायिकारणत्वमसति

---

ननु द्रव्ये गुणात्यन्ताभाव एव कुतो नेत्यत आह । अत्यन्ताभावश्चेति । नन्वस्य प्रतीतिनियामकत्वाभ्युपगमेऽपि नास्थितिनियामकत्वं तस्यैव स्थितिनियामकं किमित्यनुयोगापत्तेः । यदि च तत्र स्वभावो विशेषणताविशेषो वा तथा तदा द्रव्यत्वेऽपि तुल्यमित्यनुशयादाह । यद्वेति । विशेषणताविशेषो द्रव्यत्वविशेषणताविशेषः स्वभावो वा नियामक इत्यपि बोध्यम् । विशेषणता च नातिरिक्ता अपसिद्धान्तात् किन्तु स्वरूपसम्बन्धविशेष इत्याहुः ।

(६८) अप्रतीतेति । आश्रयासिद्धिरिति भावः । द्रव्यत्वमिति । द्रव्यपदप्रवृत्तिनिमित्तं न जातिरित्यर्थः । अनुगतत्वेनेति । यद्यप्यत्राप्येतदसिद्धिस्तथापि स्वमतावष्टम्भेनेदम् । पृथिव्यादीति । अत्र गुणवत्त्वेन पक्षता तेन तन्मते पृथिवीत्वादेरेव सत्तासाक्षाद्व्याप्यतया भागबाध इत्यत उक्तम् । सत्ताव्याप्येति । घटत्वादिसत्त्वाद्बाध इत्यत उक्तं साक्षादिति । यद्यपि तन्मते सत्तानभ्युपगमात् साध्याप्रसिद्धिस्तथापि परमतावलम्बनेनेदम् । यद्वा एतदक्षरसादेवान्य इत्युक्तमिति । गुणत्वाद्यभ्युपगमात् तत्र प्रतियोगिप्रसिद्धिरनुपलभ्यमानत्वात् । अप्रतीय-

व्यक्तस्य सामान्यस्य सास्नादिसंस्थानाभिव्यक्तगोत्व-वदेव प्रतीतेः। अन्यथा कार्य्याश्रयत्वमपि सामान्या-

---

वाधके जातिनियतं पृथिवीत्वादेरननुगतत्वात्। न च गुणवत्त्व-मुपाधिस्तदवच्छेदकं जातौ वाधके सत्येव उपाधिस्वीकारात्। उपाधिः क्लृप्तो जातिः कल्प्येति चेत्। न। साक्षात्सम्बद्धधर्म्म-वाधे सत्येव परम्परासम्बन्धस्यावच्छेदकत्वात्। पृथिव्यादि-चतुर्षु स्पर्शसमवायिकारणतया चैका जातिः स्यादिति चेत्। न। स्पर्शत्वद्रव्यत्वयोः कार्य्याकार्य्यवृत्तित्वेन कार्य्यतानवच्छेदकत्वात्। न चानित्यत्वेन स्पर्शद्रव्ये विशेष्ये जलादिपरमाणौ स्पर्शसमवायि-कारणत्वाभावेनान्त्यावयविनि च द्रव्यसमवायिकारणत्वाभावेन तज्जात्योरनङ्गीकारे जलत्वादिना सङ्करापत्तेः। यद्वा द्रव्यमिति तावत् प्रत्यक्षं सर्व्वसिद्धं तच्च यथा पृथिव्यां तथा जलेऽपीति उभय-

---

मानत्वादेतच्चान्यतरासिद्धमित्यत्रास्वरसः। कार्य्यमात्रमिति। भावकार्य्यमित्यर्थः। साक्षादिति। अन्यथा गोत्वादेरपि विलयः स्यादिति भावः। कार्य्याकार्य्येति। अत्र कार्य्येति सम्पातायातम्।

ननु कर्म्मासमवायिकारणतावच्छेदकत्वेन मूर्त्तत्वं जातिरस्तु। न चैवं तत्रापि भूतत्वेन सङ्कर इति वाच्यम्। एवं शरीरत्वासङ्करेण पृथिवीत्वमपि जातिर्न स्यात्। यदि च गन्धसमवायिकारणतया तत्सिद्धौ सङ्करात् तन्न जातिः तदा प्रकृतेऽपि तुल्यम्। न च भूतत्वेऽपि कार्य्यतावच्छेदकसम्भवात् विनिगमनाविरहः। कर्म्मत्वस्य जातित्वेन लघुत्वादिति चिन्त्यम्। गुरुत्वमिति। गुरुत्वादीत्यर्थः। यद्यपि गुणत्वेनान्यथासिद्धिः सम्भवति तथापि साक्षात्सम्बन्धधर्म्मबाधे सत्ये-वानुगतमते परम्परासम्बन्धधर्म्मविषयत्वम्। तदिदमुक्तं मूले व्यञ्जकधर्म्मानु-पादायेति।

नियतं नवस्वेव न स्यात्। कारणत्वं सामान्येन नियम्यते कार्य्यत्वञ्च। तच्च स्वाभाविकमवाधनात्। बाधनं त्वौपाधिकमिति विशेषः।

---

साधारणनिमित्तकं तच्च पृथिवीत्वादिकमेकदेशवृत्तित्वात्। व्योमवत् गुरुत्वं तदन्यानेऽपि तद्बोधादिति द्रव्यत्वसिद्धौ व्योमादावपि संयोगादिना तत्साध्यम्। (६६) यद्वा आकाशादित्रयं सत्ताव्याप्यजातियोगि संयोगजनकत्वात् कर्म्मवदिति त्रितयमात्रवृत्तिजातिसिद्धौ पृथिव्यादिषट्कं कालवृत्तिसत्ताव्याप्यजातिमत् संयोगजनकत्वात् व्योमवत्। न च विभुत्वमुपाधिः। तद्ध्यनवच्छिन्नपरिमाणवत्त्वम्। तथाचानवच्छिन्नपदस्य पक्षमात्रव्यावर्त्तकतया पक्षेतरवदनुपाधित्वं। हेतोः साध्यव्याप्यतया तदव्यापकत्वेन साध्यव्यापकत्वञ्च। न चैवं द्रव्यत्वापरजात्यापत्तिः। अप्रयोजकत्वात्। प्रकृते च विपक्षबाधकस्योक्तत्वात्।

---

(६६) द्रव्यत्वसाधकं प्रकारान्तरमाह। यद्वेति। सत्ताव्याप्यत्वं भेदगर्भमतो न सत्तया सिद्धसाधनम्। न चैवं सत्ताभिन्नजातियोगि सत्ताभिन्नसत्तासमानाधिकरणजातियोगीति वास्त्विति वाच्यम्। तत्रैव तात्पर्य्यादित्येके। वस्तुतः सत्ताव्यापकजात्याप्युक्तसाध्यसिद्धेरुद्देश्यासिद्धिरिति व्याप्यत्वाभिधानम्। भावत्वेन हेतुविशेषणान्न प्रागभावादौ व्यभिचारः। पृथिव्यादिषट्कमिति। घटत्वादिनार्थान्तरवारणाय कालवृत्तीति। अत्र संयोगजनकत्वादित्यस्य संयोगसमवायित्वादित्यर्थः। यथाश्रुते कर्म्मादौ व्यभिचारात् समवायिकारणविवक्षायां चोक्तस्यैव लघुत्वादिति। हेतोरिति। तथाचोपाध्यन्तरशङ्कापि नेति भावः। द्रव्यत्वापरेति। कालादित्रयं द्रव्यत्वव्याप्यजातियोगि संयोगसमवायित्वादिति त्रितयमात्रवृत्तिजात्यापत्तिरिति शङ्कार्थः। यत्तु प्रागुक्तक्रमेण पुनः पृथिव्यादिषट्केऽपि तत्साधनमिति तदर्थ इति तन्न। द्रव्यत्वेनान्यूनानतिरिक्तवृत्तित्वापत्तिरिति।

व्यक्तेरभेदस्तुल्यत्वं सङ्करोऽथानवस्थितिः।
रूपहानिरसम्बन्धो जातिबाधकसंग्रहः॥

व्यञ्जकधर्म्मानुपादाय जातिनिराकरणे गोत्वादिकमपि न स्यात्। नहि सास्नासम्बन्धाद्यनवभासिनैकस्य कस्यचिद्गौरिति प्रत्ययानुवृत्तिरस्ति। तस्मादस्ति द्रव्य-

---

जातौ बाधकमेव किमित्यत्राह। व्यक्तेरभेद इति। अभिन्नव्यक्तिकान्यजात्या सहान्यूनानतिरिक्तव्यक्तिका च परस्परात्यन्ताभावसमानाधिकरणा चानवस्थादिपराहता च जातिर्न भवतीत्यर्थः। तथाह्याकाशत्वं (१००) न जातिः एकव्यक्तिमात्रवृत्तित्वात्। एतद्घटत्ववत्। अन्यथा जातिलक्षणव्याघातात्। बुद्धित्वं ज्ञानपदप्रवृत्तिनिमित्तं न ज्ञानत्वभिन्नजातिः। ज्ञानभिन्नवृत्तित्वे सति सकलज्ञानवृत्तित्वात्। विषयित्ववत्। निष्क्रमणत्वप्रवेशनत्वे न जातौ परस्परात्यन्ताभावसमानाधिकरणत्वे सति परस्परसमानाधिकरणत्वात्। भूतत्वमूर्त्तत्ववत्। सामान्यं यदि द्रव्यकर्म्मभिन्नं सत् जातिमत् स्यात् गुणः स्यादिति सामान्यरूपाव्यवस्थैवान-

---

(१००) आकाशत्वमिति। आकाशपदजन्योपस्थितिप्रकार इत्यर्थः। आकाशपदप्रवृत्तिनिमित्तमित्यर्थ इत्यन्ये। अन्यथेति। यद्यपि निःसामान्यत्वे विशेषान्यत्वे च सति समवेतत्वमिति तल्लक्षणमस्तु तथाच व्यक्त्यभेदेऽपि जात्यभ्युपगमे न दोषस्तथापि समानानामेकधर्म्मस्यैव सामान्यतया सर्व्वसिद्धत्वात् तत्र तथा व्यवहाराभाव इति भावः। बुद्धित्वमिति। बुद्धिपदप्रवृत्तिनिमित्तमित्यर्थः। तथाचोभयपदप्रवृत्तिनिमित्तत्वलाभान्नान्यतरप्रवृत्तिनिमित्तीभूताधुनिकसङ्केतसंख्याया विशेषित-

त्वम्। स्वात्मन्यारम्भकत्वं स्वसमवेतकार्य्यत्वं समवायिकारणत्वमित्यर्थः। गुणवत्त्वं गुणसमवायः। तदेतद्द्वयं निमित्तव्यवस्थापकद्रव्यत्वं द्रव्यव्यवहारनिमित्तमित्यवधेयम्।

---

वस्था। विशेषो यदि द्रव्यकर्म्मान्यत्वे सति जातिमान् स्यात् गुणः स्यात्, तथाच व्यावृत्तधीहेतुर्न स्यात्। समवायो यदि प्राप्तित्वे सति समवायवान् स्यात् संयोगः स्यात्। न च प्राप्तित्वादात्मसमवायित्वं साध्यं साधनावच्छिन्नसाध्यव्यापकस्य संयोगस्योपाधित्वादिति। परमते समवायनानात्वमभ्युपेत्योक्तम्। अस्माकं व्यक्तेरभेद एव तत्रापि बाधक इति क्रमेणापादनमिति भावः।

व्यञ्जकेनान्यथासिद्धौ बाधकमाह। व्यञ्जकेति। द्रव्यत्वादिषु मध्ये द्रव्यपदप्रवृत्तिनिमित्तं विवेचयति। तदेतदिति। समवायिकारणत्व-गुणत्वयोरुपाधित्वे सखण्डतया द्रव्यत्वस्य जातित्वेनाखण्डतया लघुत्वादिति भावः।

---

त्वेन नैकत्वोभयपदाधुनिकसङ्केताभावादिति वदन्ति। जातिपदं दृष्टान्तासिद्धिवारणाय। सत्तायां व्यभिचारवारणाय सत्यन्तम्। अनुभवत्वे व्यभिचारादाह सकलेति। यद्यप्यवृत्तित्वस्यैव व्याप्यत्वं तथापि स्वरूपासिद्धिवारकसार्थकत्ववादिमतेनेदम्। विषयित्ववदिति। न च सत्यन्तमत्रासिद्ध मिच्छादेरपि विषयित्वादिति वाच्यम्। ज्ञानोपाधिकसविषयकत्वव्यवहारेण तत्र तदनभ्युपगमात्। ज्ञाननिष्ठविषयित्ववदित्यन्ये। परस्परेति। एकात्यन्ताभावसमानाधिकरणत्वं द्रव्यत्वपृथिवीत्वद्वयोरपि इति परस्परपदम्। अपे च परस्परस्यैव सामानाधिकरण्यं

कार्य्यकारणविरोधित्वं कार्य्यकारणयोरन्यतरेणापि द्रव्यजातीयं न विरुध्यते इत्यर्थः।

---

कार्य्यकारणेति। यथा शब्दो गुणकार्य्येण शब्देन नाश्यते कर्म्म चोत्तरसंयोगेन तथान्यः शब्दः कारणेन शब्देन नाश्यते। नैवं द्रव्यजातीयं तद्धि क्वचित् समवायिकारणनाशेन क्वचिदसमवायिकारणनाशेन नश्यतीत्यर्थः। यद्यप्येतत् नित्यगुणेऽप्यस्ति कार्य्यकारणोभयानाश्यत्वं च कर्म्मण्यस्ति। (१०१) न चादृष्टेतरकार्य्यगुणनाश्यावृत्तिसत्तासाक्षाद्व्याप्यजातिमत्त्वमित्यर्थः। विनिगमकाभावादसमवायिकारणनाशसहकृतावयवविभागेन द्रव्यनाशोपगमात्।

---

भवतीति तदुपादानम्। सत्ताद्रव्यत्वादौ व्यभिचारादाह सत्यन्तम्। गोत्वाश्वत्वादौ व्यभिचारादग्रिमपदम्।

सामान्यमिति। यद्यप्यप्रयोजकं सामान्यं यदि सामान्यवत् स्यात् अनवस्था स्यादित्यत्राप्रसिद्धिरित्यत आह। सामान्यं यदीति। तथापि पूर्व्वोक्तमनुसन्धेयम्। एवमग्रेऽपि। प्राप्तित्वे सतीति। यद्यपि प्राप्तित्वं सम्बन्धित्वं तदा वाच्यवाचकसम्बन्धादौ व्यभिचारः। संयोगसमवायान्यतरत्वं यदि तदा व्यर्थविशेषणतया न तद्व्याप्यत्वं तथापि तद्भिन्नत्वे सति सम्बन्धत्वं बोध्यम्। नचेति। तथाचोक्तं तर्केऽप्यप्रयोजक इति भावः। प्राप्तित्वादिति। आधाराधेयभावधीजनकाविभक्तपदार्थत्वादित्यर्थः। इत्याङ्कः। रूपादौ साध्याव्याप्तेराह। साधनेति। अभावेऽप्यसम्बन्धान्न जातिः। समवायाश्रयत्वे तस्य भावत्वापत्तिरिति ध्येयम्। अखण्डतयेत्यनन्तरं तदपेक्षया द्रव्यत्वस्येतिशेषः।

(१०१) नचादृष्टेति। अदृष्टनाश्ये घटादौ द्रव्यत्वस्य वृत्तेरसम्भववारणायादृष्टेतरेति। ईश्वरज्ञानादिनाश्ये तत्र तद्वृत्तेः स एव दोष इत्यत आह। कार्य्येति। समवायिकारणनाशनाश्ये तत्र तद्वृत्तेर्दोषतादवस्थ्यमित्यत आह।

अन्त्यविशेषवत्त्वम्। एतत् द्रव्यजातीयस्यैव सम्भवतीत्यर्थः। अथवान्त्यत्वावयविद्रव्येभ्य इति भविष्यति। अनाश्रितत्वमाधारैकस्वभावता। नित्यत्वं द्रव्यत्वे सतीति बोद्धव्यम्। चकाराद्विपर्य्ययेण विशेषरहितद्रव्य-

---

तथापि कार्य्यकारणभावनिरूपकसम्बन्धिनाश्यावृत्तिजातिमद्वृत्ति-पदार्थविभाजकोपाधिमत्त्वमभिप्रेतम्।

अन्त्येति। अन्त्यरूपो विशेषो व्यावर्त्तको धर्म्म स्तद्वत्त्व

---

गुणेति। कर्म्मव्युदासायाह नाश्येति। गुरुत्वादिवारणाय सत्तासाक्षाद्व्याप्येति। उपाधेः साक्षाद्व्याप्यत्वाभावाज्जातिपदं स्वरूपनिर्वचनपरम्। केचित्तु तद्भिन्न तद्व्याप्यजात्यव्याप्यत्वे सति तद्व्याप्यत्वं साक्षाद्व्याप्यत्वमुपाधेरपि। तथाच स्नेह-द्रव्यान्यतरत्वमादायातिव्याप्तिरिति जातिपदमित्याहुः। तन्न। द्रव्यत्वव्याप्य-मूर्त्तत्वव्याप्येतरसत्तादौ द्रव्यत्वसाक्षाद्व्याप्यत्वापत्तेः। विनिगमकाभावादिति। यद्यप्यसमवायिकारणनाशकाले द्रव्यनाशाभावात् तस्यावश्यापेक्षणीयतया विभागस्य द्रव्यनाशकत्वे मानाभावः तेनैव चान्यथासिद्धत्वात् तथापि नाश्यत्वं यदि तत्प्रयोज्यनाशप्रतियोगित्वं तदेवं बोध्यम्। यदि तज्जन्यनाशप्रतियोगित्वं तत्तदा-क्षित्यादिनाशेऽस्मदादिप्रयत्नजन्यत्वाभ्युपगमाददृष्टवदात्मसंयोगस्य सर्व्वोत्पत्तिनिमि-त्तत्वेन तज्जन्यनाशप्रतियोगित्वात् द्रव्यत्वस्यासम्भवो बोध्यः। कार्य्यकारणेति। यदि द्रव्यविभाजकेति पाठ स्तदा द्रव्यपदं पदार्थपरम्। अन्यथा तत एव गुणादि-वारणे व्यर्थविशेषणत्वापत्तेः। यद्यपि कार्य्यनाश्यावृत्तीत्येव युक्तं तथापि मूलानु-रोधादेवमुक्तम्। यथोक्तविशेषणविशेष्यभावे न वैयर्थ्यम्। नाश्यावृत्तित्वमत्र विभाजकोपाधिविशेषणम्। न तु जातिविशेषणम्। अन्यथा तादृशस्नेहत्व-जातिमात्रवृत्तितया गुणत्वस्यातिव्याप्त्यापत्तेः। तन्नाश्यत्वञ्च तदुत्पत्त्यव्यवहितो-त्तरनाशप्रतियोगित्वम्। तेन तच्छरीरकार्य्यखड्गादिना तन्नाशदर्शनान्नासम्भवः। अतएवादृष्टेश्वरज्ञानादिकारणनाश्यत्वात् द्रव्यस्य नासम्भवः। गुणकर्म्मवारणाया

त्वम्। आश्रितद्रव्यत्वम् अनित्यद्रव्यत्वञ्चान्यत्र नित्यद्रव्येभ्य इति। पृथिवीत्यादि। अनेकत्वम्। बहुत्वसमवाया

---

मित्यर्थः। एतत् द्रव्येति। (१०२) अन्त्यविशेषवन्निष्ठसत्तेतर-जातिमत्त्वमित्यर्थः। अथवेति। तदिहापि योजनीयम्। अतो वा नाव्याप्तिरित्यर्थः। आधारैकेति। समवाये नाधारैकस्वभा-वता। तेनेह परमाणुरिति प्रतीतेः तस्याधेयत्वेऽप्यदोषः। बहुत्वेति। यद्यपि घटपटाकाशा इति बहुत्वसंख्यात्वाप्यस्ति

---

वृत्तीत्यन्तम्। सामान्यादिवारणाय जातिमद्वृत्तीति। उष्णत्वादिस्पर्शविभाजको-पाधि मादायातिव्याप्तिवारणाय पदार्थेति।

(१०२) घटादावव्याप्तिरित्यत आह। अन्त्येति। अन्त्यपदं विशेषपदार्थो-पलक्षकम्। प्रमेयत्वादिकमादाय गुणेऽतिव्याप्तिवारणाय जातिपदम्। तदपि समवेतमात्रपरमित्याहुः। [समानाधिकरणेति। उक्तगत्याकाशादावतिव्याप्ति-वारणाय व्याप्यान्तम्।

ननु यत्र बहुत्वसंख्या तत्र समानाधिकरणद्रव्यविभाजकोपाधिरिति सामा-न्यतो व्याप्तिसत्त्वात् दोषतादवस्थ्यम्। न च तादृशोपाधेः प्रत्येकं व्याप्यता विव-क्षिता। समानाधिकरणपदवैयर्थ्यापत्तेरिति चेदत्राहुः। प्रत्येकव्याप्यता न विवक्षिता। तथाच सामान्यतो व्याप्तिसत्त्वादुक्तातिव्याप्तिवारणाय समानाधि-करणेति। समानाधिकरणत्वमन्यूनाधिकरणत्वं विवक्षितमिति न दोषताद-वस्थ्यम्। नचैवं व्याप्यपदार्थान्तर्गतनियमांशो व्यर्थ इति वाच्यम्। तत्रैव तात्पर्यादिति। वस्तुतस्तु द्रव्यविभाजकोपाधिव्याप्यत्वं द्रव्यविभाजकोपाध्यत्यन्ता-भावासमानाधिकरणत्वं विवक्षितम्। एवञ्चाभाववारणाय समानाधिकरणपद-मिति। ईश्वरापेक्षाबुद्धिजन्यबहुत्वसंख्यायाः सर्वत्र सम्भवान्नाव्याप्तिशङ्केति।

संस्कारवदवृत्तीति। गुणकर्म्मातिव्याप्तेराह संस्कारवदवृत्तीत्यत्यन्ताभावविशेष-

अपरा जातिः पृथिवीत्वादिका । तद्वत्ता तत्समवायः संस्कारवत्ता चेति द्रष्टव्यम् ।

क्षितीत्यादि । क्रिया स्पन्दः तद्वत्ता। मूर्त्तत्वमसर्व्वगतपरिमाणयोगः । परत्वापरत्वे गुणविशेषौ वक्ष्येते ।

---

तथापि समानाधिकरणद्रव्यविभाजकोपाधिव्याप्यबहुत्वसंख्यावत्त्वमिहाभिसंहितम् । संस्कारवत्ता चेति । क्षित्यादिचतुर्णां वेगस्थितिस्थापकवत्त्वादात्मनो भावनावत्त्वात् मनसो वेगवत्त्वात् । न चेश्वरात्मन्यव्याप्तिः । संस्कारवदवृत्तिद्रव्यत्वसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगिजातिमत्त्वस्य विवक्षितत्वात् ।

धात्वर्थः क्रियातिव्यापिकेत्यन्यथा व्याचष्टे । स्पन्द इति । स्पन्दवद्वृत्तिद्रव्यत्वव्याप्यजातिमत्त्वमित्यर्थः । (१०२) एवं परत्वा-

---

णम् । गुणात्यन्ताभावश्च संस्कारवदवृत्तिरित्यदोषः । संस्कारवद्वृत्तित्वञ्च संस्कारत्वावच्छिन्नावृत्तित्वम् । तेनात्मत्वात्यन्ताभावस्य यत्किञ्चित्संस्कारवद्वृत्तित्वेऽपि नातिव्याप्तिः । सकलसंस्कारवद्वृत्त्यत्यन्ताभावप्रतियोगिसत्ताजातिमादाय गुणाद्यतिव्याप्तेराह । द्रव्यत्वसमानाधिकरणेति । सत्तात्यन्ताभावस्य न द्रव्यत्वसमानाधिकरण इति नोक्तदोषः । अत्यन्तपदं स्वरूपनिर्व्वचनम् । जातेः प्रागभावाद्यभावात् । तदन्योन्याभावस्य यावत्संस्कारवदवृत्तित्वात् । आकाशजलान्यतरत्वमादायाकाशेऽतिव्याप्तेराह । जातीति । यदि संस्कारवन्नवृत्तीति पाठः तदा तज्जातिविशेषण मन्यच्च पूर्व्ववत् ।

(१०२) एवमपि । नन्वीश्वरापेक्षाबुद्धिसत्त्वे सर्व्वत्र तदुत्पत्तिसम्भव इति चेन्न । सर्गाद्यकालद्व्यणुकादावुत्पन्ने दैववशान्नष्टे प्रयोजनाभावात् तदनुत्पत्तेरित्येके । अतद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहिणा वेग एवोक्त इत्यन्ये । विभुवृत्तीति ।

वेगः संस्कारविशेषः तद्वत्ता। आकाशेत्यादि। सर्व्वगतत्वं पूर्व्वोक्तेषु सर्व्वेषु गतत्वं सम्बन्धः। परम-महत्त्वं प्रकर्षकाष्ठाप्राप्तमहत्परिमाणयोगः। नन्वि-यत्ता परिमाणमिति चेन्न। संख्यागुरुत्वयोरपि तथा भावप्रसङ्गात्। हस्तवितस्त्यादिपरिकल्पनाभावे पर-माणुषु तदभावप्रसङ्गाच्च। तदभावे परमसूक्ष्मत्वात् परिमित एव परमाणुरिति चेन्न। तदभावेऽपि परम-महत्त्वात्। परिमितमेवाकाशादीति न कश्चिद्विशेषः। तस्माद्धस्तवितस्त्यादिप्रकर्षनिकर्षवानितरेभ्यो व्यावृत्तः परस्परमनुवृत्तश्च गुणविशेषः प्रत्यक्षसिद्धो दुरपह्नवः। तस्य यथा निकर्षकाष्ठया परममहत्त्वमपीति। सर्व्व-

---

दावपीति नोत्पन्नविनष्टाव्याप्तिः। असर्व्वगतेति विभ्ववृत्ति-परिमाणवत्त्वमित्यर्थः। परत्वापरत्वे व्याप्यव्यापकभावाति-व्यापके इत्यन्यथा व्याचष्टे। परत्वेति। वेगो निरन्तरगति-सन्तानः क्रियावत्त्वेनैव प्राप्त इत्यन्यथा व्याचष्टे। संस्कारेति। तस्य गुणविशेषत्वान्न ततस्तल्लाभ इत्यर्थः। गतत्वं सन्दाभावा-दसम्भवीत्यन्यथा व्याचष्टे। सर्व्वेष्विति।

---

ननु विभुत्वमनवच्छिन्नपरिमाणवत्त्वं तथाचावच्छिन्नपरिमाणयोगित्वमेवास्तु लाघवादिति चेन्न। यथोक्तविशेषणविशेष्यभावे दोषाभावादित्येके। नित्य-

संयोगिसमानदेशत्वं सर्व्वेषां संयोगिनां मूर्त्तानां संयोगवृत्त्या आकाशादयो देशास्तेषां भाव स्तत्त्वम्। पूर्व्वमाकाशादय एव सर्व्वमूर्त्तेषु वर्त्तन्त इत्युक्तं सम्प्रति तु त एवाकाशादिषु वर्त्तन्त इत्यपौनरुक्त्यम्। अथवा पूर्व्वं मूर्त्तसंयोगा एवाकाशादिषु वर्त्तन्त इत्युक्तं सम्प्रति मूर्त्ता एव नभःप्रभृतिषु वर्त्तन्त इत्यपौनरुक्त्यम्। चकारात् क्रियापरत्वापरत्ववेगविरहः।

---

ननु प्रागुक्तयावन्निरूपितैकसम्बन्धाश्रयत्वमसिद्धम्। न च सर्व्वेषां मूर्त्तानां ये संयोगास्तद्वत्त्वम्। घटपटसंयोगादीनामिहाभावात्। मैवम्। संयोगित्वावच्छिन्नमूर्त्तनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वस्य यत् संयोगित्वं सर्व्वमूर्त्तेषु वर्त्तते तद्वत्त्वस्य वा विव-

---

महत्त्वाश्रयपरं विभुपदमित्यन्ये। यः संयोग इति। योयः संयोग इत्यर्थः। संयोगित्वावच्छिन्नेति। संयोगित्वावच्छिन्नप्रतियोगिकेत्यर्थः। एतच्च सत्तादावतिव्याप्तिवारणाय। न च व्यधिकरणधर्म्मावच्छिन्नाभावानभ्युपगमादेवमपि दोषतादवस्थ्यमिति वाच्यम्। तदभ्युपगन्तृमतेनैवोक्तत्वादित्याहुः।

आकाशादिनिष्ठ तादृशात्यन्ताभावप्रतियोगित्वं तत्रापीत्यत उक्तं मूर्त्तनिष्ठेति। एवञ्च संयोगसम्बन्धेनाकाशादयो वर्त्तन्ते इत्येकदेशिमत महत्त्वित्वप्रसिद्धिश्च समवेतत्वाभावनिबन्धनेति बोध्यम्।

तत्संयोगवृत्त्यावप्याकाशादि न वर्त्तत इति मतमालम्ब्याह। यदिति। तथाच सम्बन्धस्यैकत्वं यावत्त्वं वा न विवक्षितम्। किन्तु संयोगप्रतियोगिन एव यावत्त्वमितिभावः। सजातीयेति। ज्ञानाद्यपेक्षया महत्त्वमपकर्षाश्रय इति मते सजातीयपदम्।

पृथिव्यादीनामिति। भूतत्वमौपाधिकं सामान्यम्। अथ जातिरेव तत् किं न स्यात्। न स्यात्। व्यञ्जकनियमाभावेन व्यक्तिनियमानुपपत्तेः। वहिरिन्द्रियग्राह्यगुणवत्ता तद्व्यञ्जिकेति केचित्। तदा मूर्त्तत्वमपि जातिरेव स्यात्। अवच्छिन्नपरिमाणस्य व्यञ्जकस्य सद्भावात्। एवमस्तु को दोषः। इति चेन्न। जातिसङ्करप्रसङ्गात्। तथाहि मनसि मूर्त्तत्वं नभसि च भूतत्वं परस्परपरिहारेण वर्त्तमानं पृथि-

---

चितत्वात्। प्रकर्षेति। सजातीयप्रतियोगिकापकर्षानाश्रयमहत्त्वस्य नित्यमहत्त्वस्य वा योग इत्यर्थः। शेषं सुगमम्।

औपाधिकमिति। (१०४) संस्कारत्वान्यवहिरिन्द्रियग्राह्यगुणत्वव्याप्यजातिमद्विशेषगुणवत्त्वम् आत्मभिन्नविशेषगुणवत्त्वं वेत्यर्थः। जातिसङ्करेति। न च नानैव भूतत्वं मूर्त्तत्वञ्च स्यात्। मूर्त्तत्वं यदि पृथिवीत्वव्याप्यजातिः स्यात् कालवृत्तिः स्यात्। सत्तावद्व्यवहारान्यथासिद्धौ मानाभावश्चेत्यर्थात्।

---

(१०४) संस्कारत्वान्येति। वहिरिन्द्रियग्राह्यविशेषगुणवत्त्वमित्येव कृते परमाणवादावव्याप्तिरिति जातिगर्भम्। तादृशसंस्कारत्वजातिमद्भावनावत्त्वादात्मन्यतिव्याप्तिवारणाय संस्कारत्वान्येति जातिविशेषणम्। ज्ञानत्वमादाय तत्रैवातिव्याप्तिरिति वहिरिन्द्रियग्राह्येति जातिविशेषणम्। गुणत्वादिकमादाय दोषतादवस्थ्यमिति गुणत्वव्याप्येति। गुणत्वशून्यान्योन्याभावस्य रूपादौ वहिरिन्द्रिय-

व्यादौ सङ्कीर्य्येत । अस्तु तर्हि पृथिवीत्वाद्यनेकनिबन्धनप्रवृत्तिरेव भूतशब्दोऽक्षादिवदिति चेत् । न । एकनिमित्तत्वे सम्भवति अनेकार्थत्वकल्पनानवकाशात् । तस्माद्भोक्तृव्याश्रयतया भूतानि सिद्धानि प्रसिद्धानीति भूतानीत्युच्यन्ते । इन्द्रियप्रकृतित्वमिन्द्रियोपादानकारणत्वम् । तच्च नभसोऽवच्छिन्नानवच्छिन्नभेदकल्पनयोपपादनीयम् । अन्यथा भूतेभ्य इति पञ्चमी समानतन्त्रे स्वतन्त्रे च मनस एतद्वैधर्म्म्यं न स्यात् ।

---

अस्त्विति । तथाच न पञ्चसाधर्म्म्यमेकं भूतत्वमिति भावः । श्रोत्रनित्यत्वादाकाशे स्वरूपासिद्धिं निराकरोति तच्चेति । अन्यथेति । घ्राणरसनचक्षुस्त्वक्श्रोत्राणि इन्द्रियाणि भूतेभ्य इति न्यायसूत्रे पञ्चेन्द्रियाणां भूतोपादेयत्वम् । इह तु पृथिव्यादिपञ्चानामिन्द्रियोपादानत्वं मनोवैधर्म्म्यमुक्तं तन्न स्यात् । मनसोऽपि आकाशतुल्यत्वादित्यर्थः ।

---

ग्राह्यस्य ज्ञानादावपि वृत्तेरात्मन्यतिव्याप्तिवारणाय जातिपदं समवेतमात्रपरम् । संयोगत्वमादायातिव्याप्तेराह विशेषेति । नन्वेतदप्रयोजकमत आह व्यवहारेति । यद्यप्येवं घटत्वमपि नाना न स्यान्मार्द्दसौवर्णघटादिसाधारणोपाधिनैव व्यवहारान्यथासिद्धेः तथाप्येतन्मते तत्रापीष्टापत्तिरेव । अतएव संस्थानविशेषैकार्थसमवायि द्रव्यत्वमेव घटत्वमित्युक्तं कुसुमाञ्जलिप्रकाशे । केचित्तूपाध्यप्रतिसन्धानेऽपि घटोऽयमितिधीरस्ति तदप्रतिसन्धाने भूतोऽयमिति धीर्नास्तीति विशेषादित्याहुः ।

प्रकृतिशब्दः स्वभावार्थो वा। तथाच मनोव्यवच्छेदाय सन्निधिसिद्धं वाह्यपदमनुसन्धेयम्। वाह्यैकैकेन्द्रियग्राह्यविशेषगुणवत्त्वम्। वाह्येनानात्मगुणग्राहिणा एकैकेन प्रतिनियतेनेन्द्रियेण साक्षात्कारिज्ञान-

---

नन्ववच्छेदिका कर्णशष्कुली नेन्द्रियमवच्छेद्यञ्चाजन्यमेवेत्यत आह। प्रकृतिशब्द इति। यद्यप्येतद्घटाद्यव्यापकं तथापि वहिरिन्द्रियवृत्तिद्रव्यविभाजकोपाधिमत्त्वमभिप्रेतम्। अनात्मेति। (१०५) अनात्मगुणग्राहकत्वं मनस्यपीत्यात्मगुणाग्राहकेणेत्यर्थः।

---

(१०५) आत्मगुणेति। अत्र गुणपदमनावश्यकम्। यथाश्रुतस्य परमाण्वाद्यतिव्याप्तेराह। द्रव्यग्राहकेति। संयोगत्वादिजातिमादायात्माद्यतिव्याप्तेराह ग्राह्यान्तम् जातिविशेषणम्। गुणविशेषणत्वे तादृशत्रसरेणुसंयोगवृत्तिसंयोगत्वादिजातिनिबन्धनातिव्याप्तितादवस्थ्यात्। द्रव्यग्राहकेत्यपि तदर्थमेव। द्रव्यग्राहकेन्द्रियाणि चक्षुस्त्वङ्मनांसि तदग्राह्यत्वं न रूपत्वादावित्यव्याप्तिरित्यत उक्तं यावदिति। तथा विशिष्टाभावस्य प्रत्येकग्राह्यत्वेऽपि सत्त्वान्नाव्याप्तिः। द्रव्यग्राहकयावदग्राह्यत्वं संयोगत्वेऽपि तस्य द्रव्यग्राहकसन्निकर्षव्यक्तिविशेषाग्राह्यत्वात्। एवञ्च पूर्ववत् आत्मादौ धर्मत्वादिजातिमादायातिव्याप्तेराहेन्द्रिय ग्राह्येति। ज्ञानत्वादिकमादायातिव्याप्तेराह वहिरिति। प्रमात्वजातिनिबन्धनातिव्याप्तेराह गुणत्वव्याप्येति। गुणवृत्तिपदं यद्यस्ति तदा स्वरूपनिर्वचनम्। जातिपदञ्चायुविनाशिविशेषगुणत्वशून्यान्यत्वमादाय ज्ञानादिसंग्रहादतिव्याप्तिवारणाय। तस्येश्वरज्ञानादिमात्रवृत्तित्वेनोक्तरूपत्वात्। यद्यप्येवमप्यग्रिमगुणपदं व्यर्थमेव तथापि तादृशगुणत्वव्याप्यजातिमत्त्वं तादृशजातिमद्गुणवत्त्वं चेति साधर्म्यद्वयं बोध्यम्।

परमाण्वाद्यव्याप्तेराह। महत्त्वाश्रयेति। आत्मन्यतिव्याप्तिवारणाय ग्राह्यान्तं

साधनेन ग्राह्या ग्रहणयोग्या ये गुणा गन्धादयः परस्परं विशेषा व्यवच्छेदहेतवः तद्वत्त्वम्। अत्र विवक्षाभेदेन वाह्यैकैकेन्द्रियग्राह्यगुणवत्त्वं वाह्येन्द्रियग्राह्यविशेषगुणवत्त्वं वेति बोद्धव्यम्। चतुर्णां पृथिव्यप्तेजोवायूनां द्रव्यारम्भकत्वं द्रव्यसमवायिकारणत्वम्। स्पर्शवत्त्वं स्पर्शसमवायः। उपलक्षणञ्चैतत्। अवा-

---

नन्वेकैकेति विशेषणं व्यर्थं विशेष्यस्यैव प्रकृतोपयोगादित्यत आह। अत्रेति। द्रव्यग्राहकयावदिन्द्रियाग्राह्यरहितेन्द्रियग्राह्यगुणवृत्तिगुणत्वव्याप्यजातिमद्गुणत्वमित्यर्थः। वाह्येन्द्रियेति। महत्त्वाश्रयेन्द्रियग्राह्यविशेषगुणवृत्तिगुणत्वव्याप्यजातिमद्गुणवत्त्वमित्यर्थः। द्रव्यजनकत्वमदृष्टादावतिव्याप्तमित्यत आह। द्रव्यसमवायीति। न चान्यावयविन्यव्याप्तिः द्रव्यसमवायिकारणवृत्तिद्रव्यविभाजकोपाधिमत्त्वमित्यर्थात्। अवान्तरेति। जन्यानुत्व-

---

गुणविशेषणम्। न तु पूर्ववज्जातिविशेषणम्। संस्कारत्वमादाय भावनासाधारण्येनात्मन्यतिव्याप्तेर्महत्त्वाश्रयग्राह्यत्वमिच्छादावपीति दोषतादवस्थ्यमित्यत आह। इन्द्रियेति। संयोगत्वमादाय दोषतादवस्थ्यादाह विशेषेति। सत्तामादायातिव्याप्तेराह गुणत्वव्याप्येति। गुणत्वम्न्यून्यान्यत्वमादाय ज्ञानादिसाधारण्यादात्मन्यतिव्याप्तिवारणाय जातिपदम्। गुणपदञ्च पूर्ववत्।

द्रव्यसमवायीति। संयोगादिसमवायित्वं कालादावपीति प्रथमद्रव्यपदम्। द्रव्यनिमित्तकारणं तत्रैवेति समवायीति। तादृशद्रव्यत्वसत्त्वात् तत्रैवातिव्याप्तेरिति चरमद्रव्यपदं व्यर्थम्। तथापि द्रव्यसमवायिकारणत्वं द्रव्यनिमित्तकारणासमवायिकारणभिन्नकारणत्वमित्यदोषः। घटाव्याप्तेर्जातिगर्भमाह। जन्यानु-

न्तराणुत्वमहत्त्वे स्थितस्थापकसंस्कारयोगः शरीरारम्भकत्वञ्चेति द्रष्टव्यम्।

त्रयाणां पृथिव्यप्तेजसाम्। प्रत्यक्षत्वं वाह्येन्द्रियग्राह्यत्वम्। रूपवत्त्वं रूपसमवायः। द्रवत्ववत्त्वं द्रवत्वसमवायः। सम्भाव्यते चैतत् द्वयोः पृथिव्युदकयोः। गुरुत्वं तत्कार्य्यं पतनञ्च, रसवत्त्वं रसो माधुर्य्यादिः

---

वद्वृत्तिद्रव्यत्वव्याप्यजातिमत्त्वमित्यर्थः। एवमवान्तरमहत्त्वमपि निर्व्वाच्यम्। शरीरेति। शरीरारम्भकवृत्तिद्रव्यत्वव्याप्यजातिमत्त्वमित्यर्थः।

आत्मवृत्त्यर्थमाह वाह्येति। (१०६) वाह्येन्द्रियप्रत्यक्षवृत्तिद्रव्यत्वापरजातिमत्त्वमित्यर्थः। घटाद्यव्याप्तिनिरासायाह। सम्भाव्यते इति। द्रव्यत्ववद्वृत्तिद्रव्यत्वव्याप्यजातिमत्त्वमित्यर्थः। तत्कार्य्यमिति।

---

त्वेति। यद्यपि जन्यवृत्ति-तादृशजातिमत्त्वमित्येवास्तु तथापि यथोक्तविशेषणविशेष्यभावे न वैयर्थ्यम्। जन्यपदं मनस्यतिव्याप्तिवारणाय।

द्रव्यत्वमादायातिव्याप्तेराह। द्रव्यत्वव्याप्येति। द्रव्यत्वकालान्यतरत्वमादाय कालातिव्याप्तेराह जातीति। घटाद्यव्याप्तेरन्यथाह। शरीरेति। शरीरसमवायिकारणवृत्तीत्यर्थः। यद्यपि शरीरवृत्तीत्येव युक्तं तथापि तत्रैव तात्पर्य्यमित्येके। यथोक्तविशेषणविशेष्यभावे न वैयर्थ्यमित्यन्ये। एतच्चोपलक्षणम्। इन्द्रियारम्भकवृत्तिद्रव्यत्वव्याप्यजातिमत्त्वमित्यपि ध्येयम्।

(१०६) परमाणावव्याप्तेरन्यथा व्याचष्टे। बाह्येन्द्रियेति। बाह्यपदमात्म-

तद्वत्त्वम्। आलोकप्रकाश्यत्वम् अभास्वररूपत्वञ्चेति चार्थः। भूतात्मनां पृथिव्यादीनां पञ्चानामात्मनाञ्च वैशेषिकगुणवत्त्वं स्वाश्रयव्यवच्छेदोपयिकावान्तरसामान्यविशेषवतो वैशेषिका गुणा रूपादयो बुद्ध्या-

---

ननु पतनमधःसंयोगफलिका क्रिया यदि तदा तेजस्यतिप्रसङ्गः। अथ गुरुत्वासमवायिकारणिका क्रिया तदा गुरुत्वस्यैव साधर्म्ये व्यर्थमधिकम्। मैवम्। गुरुत्वप्रयोज्यपतनत्वव्याप्यजातिमतः पतनस्य विवक्षितत्वात्। आलोकेति।

नन्वेतदालोकेऽतिव्यापकं विषयतया तत्प्रत्यक्षे तस्यापि हेतुत्वात्। न चालोकान्यत्वेन विशेष्यं परमाण्वाद्यव्यापकत्वात्। न। (१०७) आलोकान्यत्वे सति तज्जन्यप्रत्यक्षविषयद्रव्यवृत्तिद्रव्यत्वापरजातिमत्त्वस्याभिप्रेतत्वात्। स्वाश्रयेति। स्वाश्रयसमानाधि-

---

न्यतिव्याप्तिवारणाय। विशेषगुणत्वादिकमुपाधिमुपादायातिव्याप्तेराह। जातीति। प्रत्यक्षपदं लौकिकप्रत्यक्षपरम्। द्रव्यत्ववद्वृत्तीति। गुरुत्वेति। न चात्रापि गुरुत्वस्यैव गमकत्वे शेषवैयर्थ्यमिति वाच्यम्। पतनत्वव्याप्यजातिविशेषतः पतनस्य विवक्षितत्वात्। तत्परिचयार्थं गुरुत्वप्रयोज्येत्युक्तम्। ननु तस्यापि हेतुप्रवेश इति। यद्यपि तादृशमपि पतनमव्यापकं तादृशपतनसमानाधिकरणद्रव्यत्वव्याप्यजातिमत्त्वं लक्षणम्।

(१०७) आलोकान्यत्वे सतीति। सत्यन्तमालोकवारणाय। आत्मवारणाय तज्जन्येति। आलोकजन्येत्यर्थः। आलोकपदञ्चात्र न तेजःपरं किन्तु प्रभामात्रपरम्। तेन तैजसशरीरजन्यप्रत्यक्षविषयात्मनि नातिव्याप्तिः। प्रत्यक्षपदं लौकिक-

दयश्च तद्वत्त्वम्। उपलक्षणञ्चैतत्। प्रत्यक्षगुणवत्त्वञ्चेत्यपि द्रष्टव्यम्। क्षित्युदकात्मनां चतुर्दशगुणवत्त्वम्। संख्यामात्रेण साधर्म्यमेतत्। न तु गुणा विशि-

---

करणद्रव्यविभाजकोपाध्यत्यन्ताभावसमानाधिकरणगुणवृत्तिगुणत्वव्याप्यजातिमद्गुणवत्त्वमित्यर्थः। प्रत्यक्षेति। प्रत्यक्षगुणवद्वृत्तिद्रव्यविभाजकोपाधिमत्त्वमित्यर्थः।

---

प्रत्यक्षपरम्। द्रव्यपदं व्यर्थम्। सत्तामादायातिव्याप्तेराह। द्रव्यत्वव्याप्येति। स्पर्शवत्त्वादावतिव्याप्तेराह। जातीति।

स्वाश्रयेति। स्वं गन्धत्वादि तदाश्रयो गन्धादिः तत्समानाधिकरण तादृशोपाधिः पृथिवीत्वादिस्तदत्यन्ताभावो जलादौ तत्समानाधिकरण-गुणावृत्ति-गन्धत्वादि तद्वत्त्वं विशेषगुणत्वं तदाश्रयत्वञ्च वैशेषिकगुणवत्त्वं क्षित्यादीनां साधर्म्यमित्यर्थः। रूपादेश्च यद्यपि रूपत्वादिना तथात्वं तथापि नीलत्वादिना तथात्वम्। जलादिरूपेऽपि रूपत्वव्याप्यजातिविशेषस्य सत्त्वात्। गुणवृत्तीति गुणपदं व्यर्थम्। गुणवृत्तिगुणत्वव्याप्यपदयोरन्यतरान्तर्भावेन लक्षणद्वयम्। मनोवेगत्वाद्युपाधिमादायातिव्याप्तेराह। जातीति।

ननु निविड़संयोगे सुवर्णद्रवत्वमात्रनिष्ठजात्यभ्युपगमात् सुवर्णद्रवत्वे पतनवैलक्षण्यानुमेयजातिविशेषवति गुरुत्वे च विशेषगुणलक्षणमतिव्याप्तमिति चेत्। भ्रान्तोऽसि। न ह्यत्र विशेषगुणलक्षणं प्रकृतं किन्तु पृथिव्यादिषट्केतरभेदसाधकतया विशेषगुणवत्त्वं निरुक्तं तत्र नोक्तदोषः। प्रत्युत तद्व्यावर्त्तकविशेषणोपादाने व्यर्थविशेषणत्वापत्तेः। यदा तु विशेषगुणलक्षणजिज्ञासा तदा तद्भिन्नत्वविशेषितमेतदेव लक्षणं सुवचमिति। परमाणुव्याप्तेराह। प्रत्यक्षगुणवद्वृत्तीति। प्रत्यक्षपदं सर्व्वत्र लौकिकप्रत्यक्षपरम्। पदार्थविभाजकद्रव्यत्वमादायातिव्याप्तेराह। द्रव्येति।

षतो विवक्षिताः । सम्भावितञ्चैतत् साधर्म्यं न तु व्यापकम् । परमेश्वरात्मन्यसम्भवात् । तानग्रे गणयिष्यति । आकाशात्मनां क्षणिकैकदेशवृत्तिविशेषगुणवत्त्वम् । क्षणिका आशुतरविनाशिनः एकदेशवृत्तयो व्याप्यवृत्तयो विशेषा ये स्वाश्रयव्यवच्छेदाय गुणा स्तद्वत्त्वम् । अत्रापि विवक्षाभेदादेकदेशवृत्तिविशेषगुणवत्त्वम् । क्षणिकविशेषगुणवत्त्वञ्चेत्यपि द्रष्टव्यम् । आकाशे तादृशो गुणः शब्दः । आत्मनि बुद्ध्यादिः ।

---

संख्यामात्रेणेति । (१०८) उष्णस्पर्शसमानाधिकरणप्रत्यक्षद्रव्यवृत्तिद्रव्यत्वव्याप्यजातिसमानाधिकरणगुणत्वमित्यर्थः । यथाश्रुते दोषमाह । नन्विति । सम्भावना योग्यता सा च निरुक्तरूपैव । क्षणिकत्वस्यानङ्गीकारादाह । आशुतरेति । क्षणचतुष्टयाव्यापका इत्यर्थः । यद्वा विभुप्रत्यक्षगुणवत्त्वं निरवयवेन्द्रियग्राह्यगुणवत्त्वं वा विवक्षितम् । द्वित्वाद्याशुतरविनाशिगुणवत्त्वं क्षित्यादेरपीत्यत उक्तम् एकदेशेति । एकदेशवृत्तिसंयोगवत्त्वमन्यत्रापीत्यत उक्तं क्षणिकेति । अव्याप्येति । स्वसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगिन इत्यर्थः । समुदितविवक्षायामन्य-

---

(१०८) गुणे संख्या नास्तीत्यन्यथा व्याचष्टे । उष्णेति । तेजोवारणायोष्णस्पर्शसमानाधिकरणेति तादृशजातिसमानाधिकरणगुणविशेषणम् । ननु तादृशजातिविशेषणम् । तादृशजातिमत्त्वस्यैव विशेषगुणत्वे विशेषवैयर्थ्यापत्तेः । द्रव्यत्व-

दिक्कालयोः पञ्चगुणवत्त्वम् । सङ्ख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविभागाः पञ्चैव गुणाः दिशि काले च सर्व्वोत्पत्तिमतां निमित्तकारणत्वम् । तत्समवेतद्वित्व-

---

तरविशेषणवैयर्थ्यमाशङ्क्याह । अत्रापीति । क्षणिकविशेषेति । न चेश्वरात्मन्यव्याप्तिः । क्षणिकविशेषगुणवद्वृत्तिद्रव्यविभाजकोपाधिमत्त्वस्य विवक्षितत्वात् । संख्यादिपञ्चवत्त्वं द्रव्यमात्रस्येत्यत आह । पञ्चैवेति । विशेषगुणशून्यविभुत्वमित्यर्थः ।

---

व्याप्यपदवैयर्थ्यापत्तेश्च । यथोक्तविशेषणविशेष्यभावे न वैयर्थ्यम् । वाय्वाद्यतिव्याप्तेराह । प्रत्यक्षद्रव्यवृत्तीति । द्रव्यपदमत्र व्यर्थम् । सत्तामादायातिव्याप्तेराह । द्रव्यत्वव्याप्येति । घटाकाशान्यतरत्वमादायाकाशेऽतिव्याप्तिवारणायाह । जातीति । तादृशघटत्वजातिसमानाधिकरणघटाकाशान्यतरत्वसत्त्वादाकाशेऽतिव्याप्तेराह । गुणेति । क्षद्विष्ठगुणेत्यर्थः । तेन घटाकाशसंयोगादिकमादाय न दोषतादवस्थ्यम् । निरुक्तस्य तत्र सत्त्वादाह । यथाश्रुत इति । चतुर्थक्षणवृत्तिध्वंसप्रतियोगिन इत्यर्थः ।

विभ्विति । विभुत्वे सति प्रत्यक्षगुणवत्त्वमित्यर्थः । तस्यान्तस्थितं घटाद्यतिव्याप्तिवारणाय । कालाद्यतिव्याप्तिवारणाय प्रत्यक्षेति । सत्तामादाय दोषतादवस्थ्यादुक्तं गुणेति । प्रत्यक्षगुणवद्वृत्तिद्रव्यविभाजकोपाधिमत्त्वे क्षयिमभाग तात्पर्यम् । तेन न परमेश्वरात्मन्यव्याप्तिः । एवमग्रेऽपि । निरवयवेति । इन्द्रियत्वेन ग्राहकत्वं विवक्षितम् । तेन मनोग्राह्यरूपादिकमादाय नातिव्याप्तिः ।

क्षणिकेति । क्षणिकत्वावच्छेदकजातिमद्विशेषगुणवद्वृत्तीत्यर्थः । तेन चतुर्थक्षणे रूपादिनाशसम्भवेऽपि नातिव्याप्तिः । द्वित्वादिकमादायातिव्याप्तेराह । द्रव्येति । गुणे पञ्चत्वं नास्त्येव सत्त्वे वा व्यक्तिभेदानामनन्तत्वात् पञ्चैवेत्यवधारणमयुक्तमित्यन्यथा लक्षणमाह । विशेषेति । नित्यविभोरिति । दैशिककालिकान्वयव्यतिरेकाभावादिति भावः ।

पृथक्त्वादि संयोगविभागवर्जं सर्व्वाण्युत्पत्तिमन्ति गृह्यन्ते तेषां निमित्तकारणं दिक्कालौ। न हि दिक्कालानपेक्षं किञ्चिदुत्पद्यते। तथाच व्यपदिश्यन्ते इहेदानीं जात इति। गृहे जातो गोष्ठे जात इत्यनिमित्तमपि

---

तथाचेति। नन्वेतावता न कारणत्वसिद्धिः। इह गवि गोत्वमित्यादौ व्यभिचारादिदानीमित्यनेन कालावच्छेदकसूर्य्यस्पन्दादेरेव विषयीकरणात्। न चेहेदानीं जात इत्युत्पत्तिं प्रत्याधारताप्रतीतेर्बाधकं विना कारणत्वमिह कपाले घटो जात इतिवदिति वाच्यम्। उपाधेरेव तथात्वे नित्यविभोः कारणत्वे मानाभावात्। मैवम्। उपाधेरनुगतत्वेनानुगतकारणोल्लेखिप्रत्ययस्य दिक्कालयोरेव विश्रान्तेः। न चाकाश एव तदापत्तिः। (१०९) अभिन्नतन्तुहेतुकद्रव्यगुणकर्म्माभिन्नं यावत्कार्य्यं निरवयवेन्द्रियग्राह्य-

---

उपाधेरिति। ननु नित्यविभोः कालस्य कारणत्वेऽपि कालोपाधीनामवश्यं कारणत्वमित्यावश्यकत्वाल्लाघवाच्च तेषामेव हेतुत्वमस्तु। नवाननुगमः कालोपाधित्वेनानुगमात्। अन्यथा तदवच्छिन्नकालत्वमप्यनुगतं न स्यादिति चेन्न। उत्पन्नाधिकरणत्वेन प्रतीयमानतया उभयत्रापि विशेषादुभयोरपि कारणत्वादित्याहुः।

(१०९) अभिन्नेति। भिन्नान्तमत्र पक्षभिन्नस्यैव दृष्टान्तत्वमिति मते दृष्टान्तार्थम्। न चाभिन्नतन्तुहेतुकं द्रव्यमसिद्धमसमवायिकारणसंयोगादिति वाच्यम्। अंशुद्वयसंयोगस्यैव कारणैकार्थप्रत्यासन्नत्वेनासमवायिकारणत्वमिति मतावलम्बनाय वा घटमात्रसमवेतरूपादिमात्रपक्षत्वे घटजन्यत्वेन सिद्धसाधनवारणाय याव-

गेहादि व्यपदिश्यत इति चेन्न। तस्याप्यधिकरणतया निमित्तत्वात्। न ह्यधिकरणमकारणकमिति।

---

विशेषगुणजातीयशून्यसाधारणद्रव्यजन्यं कार्य्यत्वात् सम्मतवदित्यनुमानात्। दिक्समवेतभिन्नं कार्य्यं पक्षीकृत्य कार्य्यत्वाद् दिग्जन्यत्वं साध्यमित्याहुः।

---

दिति। आत्माकाशजन्यत्वेनार्थान्तरवारणाय शून्यान्तम्। दृष्टान्तासिद्धिवारणाय निरवयवेन्द्रियग्राह्येति। इन्द्रियत्वेनाग्राहकता विवक्षिता। तेन तन्तुगन्धादे र्मनोग्राह्यतया न दोषतादवस्थ्यम्। मनोग्राह्यात्मैकत्वजातोयगुणकाले सत्त्वाद्वाधो दृष्टान्तासिद्धिश्चेत्यत उक्तं विशेषेति। ईश्वरेणार्थान्तरवारणाय जातीयेति। साजात्यञ्च गुणत्वव्याप्यजात्या बोध्यम्। मनसार्थान्तरवारणाय साधारणेति। एकस्त्वर्थः मनन्त्वनेकमिति नोक्तदोषः। न चैवमप्येकेन केनचिन्मनसार्थान्तरविनिगमनाभावेन प्रमाणाभावेन च जनकत्वे बाधात्। इह त्वुत्पत्त्यधिकरणतया प्रतीयमानत्वेन बाधाभावादित्याहुः। ईश्वरज्ञानेनार्थान्तरवारणाय द्रव्येति।

ननु च तत्तद्द्रव्यादित्वस्य तत्तद्द्रव्यजन्यतयार्थान्तरमिति वाच्यम्। लाघवेन पक्षीभूततावत्कार्य्यजनकीभूतस्यैकस्य सिद्धेः। न चैवं दृष्टान्तीभूतद्रव्यादित्वयजनकत्वं तस्य न स्यादिति वाच्यम्। अन्तरङ्गकार्य्यत्वेन तत्रापि तज्जन्यत्वानुगमात्। यद्येवमपि दिक्कालयोरन्यतरसिद्धावप्यन्यथासिद्धिरित्युभयोरुक्तसाधर्म्म्यासिद्धिस्तथापि दिग्भिन्नेति विशेषणात् दिशस्तत्कारणत्वं साध्यम्। न चैवमुभयभिन्नत्वविशेषणात् तदतिरिक्तसिद्धिरेवञ्च तदतिरिक्तसिद्धिरपीति वाच्यम्। विपक्षे बाधकाभावात्। प्रकृते त्विहेदानीं जातमित्यधिकरणताप्रतीतिरेव विपक्षबाधिकेति।

दिक्समवेतभिन्नमिति। पक्षभिन्नमिति पक्षभिन्नदृष्टान्तलाभाय। सम्प्रदायमते अंशतः सिद्धसाधनवारणाय च भिन्नान्तं पक्षविशेषणम्। अत्रच दिक्समवेत-

यद्येवं सम्प्रदानत्वेनादृष्टद्वाराधिष्ठातृतया चात्मनामपि सर्व्वोत्पत्तिमन्निमित्तकारणत्वमप्यस्ति तत्कथमनयोरेवोपन्यास इति चेत् सत्यम् । अधिकरणतया तु सर्व्वोत्पत्तिनिमित्तत्वं विवक्षितम् । यथा हि दिक्कालोपाध्यधिकरणा सर्व्वस्योत्पत्तिः नैवमात्मोपाध्यधिकरणेति । परत्वापरत्वानुमेयत्वञ्चेति चार्थः । क्षिति-

---

सम्प्रदानत्वेनेति । क्वचित् सम्प्रदानत्वेन क्वचिददृष्टद्वारा(११०) क्वचिदधिष्ठातृतयेत्यर्थः । परत्वेति । परत्वासमवायिकारणसंयोगाश्रयविभुत्वमित्यर्थः । एवमपरत्वेऽपि । नैमित्तिकं यदि स कारणमुच्येत तदा सांसिद्धिकमपि द्रवत्वं तथेत्यन्यथा व्याचष्टे । अग्नीति । तेज इत्यर्थः । तेजःसंयोगासमवायिकारणद्रवत्ववद्वृत्तिद्रव्यत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिमत्त्वमत्र विवक्षितम् । अतो नाव्याप्त्यतिव्याप्ती ।

---

त्वमुपाधिः । न च दिग्जन्ये तद्वृत्तिसंयोगध्वंसादौ साध्याव्याप्तिः, दिग्वृत्तित्वस्योपाधित्वे वा कार्य्यमात्रस्यैव तथात्वेन साधनव्यापकत्वमिति वाच्यम् । समवेतत्वरूपपक्षधर्म्मावच्छिन्नसाध्यव्यापकत्वाच्च ।

किञ्च यथाश्रुते संयोगादिध्वंसएवांशतः सिद्धसाधनम् । दिग्वृत्तित्वभिन्नत्वविवक्षया पक्षतावच्छेदकाप्रसिद्धिरित्यपि नास्वरसोद्भावनमिति । तच्चोपलक्षणमेव । कालजन्यत्वमपि साध्यमित्यपि बोध्यम् ।

(११०) क्वचिदधिष्ठातृतयेति । ईश्वरात्मनीत्यर्थः । परत्वानुमेयत्वं तत्त्वाश्रयत्वादावतिव्याप्तमित्यन्यथा व्याचष्टे । परत्वेति । परत्वकारणादृष्टवदात्मसंयोगाश्रयत्वमात्मनीत्यत उक्तमसमवायीति । पिण्डेऽतिव्याप्तिवारणाय विभुपदम् ।

तैजसोर्नैमित्तिकद्रवत्वयोगः। अग्निसंयोगत् निमित्तादुत्पद्यते यत् द्रवत्वं तत्समवायः। सुवर्णादौ तैजसे घृतादौ पार्थिवे एवं विपर्य्ययात् सर्व्वत्र साधर्म्म्यं वैधर्म्म्यञ्च वाच्यमिति। एवमनेन न्यायेन साधर्म्म्यं यत् तदेव विपर्य्ययाद्व्यावृत्तेर्वैधर्म्म्यं वैधर्म्म्यं यत् तदेव विपर्य्ययादनुवृत्तेः साधर्म्म्यम्। अथवा साधर्म्म्यविप-

---

नन्वभिधेयत्वादेः साधर्म्म्यस्य केवलान्वयित्वात् न विपर्य्ययइत्यत आह व्यावृत्तेरिति। यदन्यतो व्यावृत्तं साधर्म्म्यं तदेव स्वाश्रयाव्यावृत्तधीहेतुत्वात् वैधर्म्म्यं वाच्यमतो नोक्तदोष इत्यर्थः। वैधर्म्म्यं तु विपर्य्ययादित्यत्र नायमर्थ इत्याह। अनुवृत्तेरिति। वैधर्म्म्यं यदनेकवृत्ति तदेवानुगतधीहेतुत्वात् साधर्म्म्य-

---

संयोगपदं स्वरूपनिर्वचनम्। न च दैशिककालिकोभयपरत्वाद्यनुगतजात्यनभ्युपगमादननुगम इति वाच्यम्। उभयापरत्वान्यनिमित्तनाश्यमात्रवृत्तिगुणत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिमत्त्वम्। उभयपरत्वान्यतादृशजातिमदपरत्वमिति विवक्षितत्वात्। यदि च परत्वानुमेयत्वमेकमेव साधर्म्म्यमभिमतं तदा अपरत्वादिव्यावर्त्तकमन्यत्वपर्य्यन्तं न देयम्। तेजःसंयोगेति। अत्र तेजःपदं व्यर्थमित्येके। तेजःसंयोगासमवायिकारणत्वेन तत्प्रयोज्यजातिरेवोपलक्षितेत्यन्ये। अदृष्टवदात्मसंयोगकारणकं सांसिद्धिकद्रवत्वेऽपीत्यतिव्याप्तिवारणाय असमवायीति। यदि तेजः पदप्रवेशस्तदा असमवायीति न देयम्। एवञ्च लक्षणद्वये तात्पर्य्यम्। संयोगजसंयोगमादायातिव्याप्तिवारणाय द्रवत्वेति। साक्षात्पदं यद्यस्ति तदा भेदेन व्याप्यत्वबोधनायातो नाव्याप्त्यतिव्याप्तीति। यदि तादृशद्रवत्ववत्त्वमुच्यते तदा घटाद्यव्याप्तिः स्यात्। यदि च द्रवत्ववृत्तीत्यादिकमेव क्रियेत तदा जलेऽतिव्याप्तिः स्यादित्यर्थः।

र्य्ययोऽप्यन्यस्मात् साधर्म्म्यम्। वैधर्म्म्यविपर्य्ययोऽप्य-न्यस्माद्वैधर्म्म्यम्। स्वयमूहित्वा वाच्यमध्यापकेन ग्राह्यं शिष्यैरिति।

तद्यथा गन्धवती वैधर्म्म्यं वक्ष्यति। तद्विपर्य्ययान्निर्गन्धत्वमबादीनां साधर्म्म्यम्। उक्तं जलभूम्योः साधर्म्म्यं गुरुत्वं रसवत्त्वञ्च। तद्विपर्य्ययादितरेभ्यो वैधर्म्म्यम्। विपर्य्ययस्त्वितरेषां तेजःप्रभृतीनां साधर्म्म्य

---

मित्यर्थः। अतो नैकव्यक्तिके वैधर्म्मे व्यभिचारः। प्रायिकत्वेनैतदुक्तमित्यप्याहुः। साधर्म्म्यविपर्य्ययोऽप्यन्यस्मात् साधर्म्म्यमित्यत्र वैधर्म्म्यञ्चेत्यपि द्रष्टव्यम्। अन्यस्मादिति ल्यप्लोपे पञ्चमी। अन्यं प्राप्य साधर्म्म्यमित्यर्थः। वैधर्म्म्यविपर्य्ययोऽप्यन्यस्मात् वैधर्म्म्यमित्यत्र साधर्म्म्यमित्यपि द्रष्टव्यम्।

तत्र वैधर्म्म्यं यत् तदेवेत्यत्रोदाहरति। तद् यथेति। तद्गन्धवत्त्वं वैधर्म्म्यं विपर्य्ययादनुवृत्तेः पृथिवीनां साधर्म्म्यं वाच्यमित्यर्थः। वैधर्म्म्यविपर्य्ययोऽपीत्यत्रोदाहरति। निर्गन्धत्वमिति। अत्रापि तद्विपर्य्ययादिति योज्यम्। विपर्य्ययात् पृथिवीतो व्यावृत्तेः। तदपेक्षया वैधर्म्म्यमेव निर्गन्धवत्त्वं जलादीनां साधर्म्म्य मित्यर्थः। साधर्म्म्यं यत् तदेवेत्यत्रोदाहरति। उक्तमिति। गुरुत्वादिकं यत्साधर्म्म्यमुक्तं तदेवान्यापेक्षया वैधर्म्म्यं वाच्यमित्यर्थः। साधर्म्म्यविपर्य्ययोऽपीत्यत्रोदाहरति। विपर्य्ययस्त्विति। गुरुत्वा-

गुरुत्वं नीरसत्वञ्च। एवमात्मानं विहाय परार्थत्वमचेतनत्वम्। मनो विहायानन्तःकरणत्व मननुकरणत्वञ्च। अम्भो विहाय निःस्नेहत्व मक्लेदत्वञ्च। तेजो विहायानुष्णत्व मदाहकत्वञ्च। जलज्योतिरनिलानामपाकजस्पर्शवत्त्वम्। जलज्योतिषोरपाकजरूपवत्त्वम्। दिक्कालमनसां वैशेषिकगुणविरहः। वाय्वाकाशदिक्कालमनसा

---

देरुक्तसाधर्म्यस्य विपर्य्ययो यदगुरुत्वादिकं तदेवेतरेषां जलभूम्यपेक्षया वैधर्म्यं वाच्यमित्यर्थः। परार्थत्वं (१११) भोगानधिकरणत्वमित्यर्थः। अनन्तरिति। आत्मग्राहकेन्द्रियान्यद्रव्यत्वमित्यर्थः। अक्लेदत्वमिति। सांसिद्धिकद्रवत्वविरहि द्रवत्वमित्यर्थः। वाय्वाकाशेति। प्रत्यक्षद्रव्यावृत्तिद्रव्यत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिमत्त्वमित्यर्थः।

---

(१११) ननु परार्थत्वं परप्रयोजनत्वं यदि तदा कालादावव्याप्तिः। परप्रयोजनहेतुत्वं चेत्, तदात्मन्यतिव्याप्तिरित्यन्यथा व्याचष्टे। भोगेति। भोगासमवायित्वमित्यर्थस्तेन शरीरे नाव्याप्तिः। न चेश्वरेऽतिव्याप्तिः। भोगाधिकरणवृत्तिद्रव्यत्वव्याप्यजात्यनधिकरणत्वस्य विवक्षितत्वादित्येके। भोगपदं सुखादिसाक्षात्कारपरं स चेश्वरेऽपीति नोक्तदोष इत्यपरे। वस्तुतो व्यर्थविशेषणताभयेन साक्षात्कारमात्रपरमेव तदिति नोक्तदोषः। अचेतनत्वमित्यत्र च ज्ञानानधिकरणत्वं विवक्षितम्। ज्ञानत्वसाक्षात्कारत्वजात्योश्च भेद इति नाविशेष इति। यच्चात्मानं विहायेत्यत्रात्मपदं संसारिपरमितीश्वरस्यापि लक्ष्यत्वान्नोक्तदोष इति। तन्न। एवमप्यचेतनत्वमित्यत्राव्याप्त्यापत्तेः।

नन्वन्तःकरणं मनस्तथाच मनोऽन्यस्य साधर्म्यं मनोऽन्यत्वं इति हेतुपक्षतावच्छेदकयोरभेदे केतरभेदानुमानमित्यन्यथा व्याचष्टे। आत्मेति। पृथिवीपर-

मतीन्द्रियत्वम् । आत्ममनसोः शरीरावच्छेदेनैव वृत्ति-

आत्ममनसोरिति । शरीरावच्छेदः शरीरसंयोगविशेषः वृत्ति-लाभो भोगजनकत्वं तच्चासमवायिकारणत्वम् । तेन भोगासम-वायिकारणसंयोगाश्रयत्वमित्यर्थः । शरीरतत्संयोगौ च निमित्त-कारणे इति नातिव्याप्तिः । यद्वा निरवयवत्वे सति ज्ञानहेतु शरीरसंयोगवत्त्वमित्यर्थः ।

ननु वैधर्म्यं विपक्षव्यावृत्तो धर्मो लक्षणमित्युच्यते । तत्र कालान्यपदार्थलक्षणानि जात्युपाधिरूपाणि सर्वाणि कालेऽति व्यापकानि अलक्ष्ये काले गतत्वात् । न हि पृथिवीत्वादयो रूपा-दयो वा न काले इदानीं पृथिवीत्वादिकमित्यनुभवात् । यदि कालावच्छेदका उपाधय एवेदानीं इति गृह्यन्ते तदा तत्रैवाति-

---

माख्वादावतिव्याप्तेराह । प्रत्यक्षेति । प्रत्यक्षावृत्तीत्येव विवक्षितम् । द्रव्यपदम-किञ्चित्करम् । अत्र द्रव्यत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिपदं द्रव्यसाक्षाद्विभाजकोपाधिपरम् । तेन कालादौ तादृशजात्यभावान्नाव्याप्तिः ।

भोगासमवायीति । भोगपदं ज्ञानपरमतो न व्याप्योर्विशेषणत्वमित्येके । भोगत्वं जातिरिति नोक्तदोषः इत्यन्ये । संयोगपदं स्वरूपनिर्वचनम् । ईश्वरात्म-लक्ष्यत्वे तादृशसंयोगाश्रयवृत्तिद्रव्यत्वव्याप्यजातिमत्त्वे तात्पर्यम् । एवमग्रेऽपि । कार्य्यकार्यप्रत्यासन्नतया शरीरात्मसंयोगोऽप्यसमवायिकारणमेवेति यदि ब्रूयात् तदा लक्षणान्तरमाह । यद्वेति । प्राणाद्यतिव्याप्तेराह सत्यन्तम् ।

ननु शरीरपदं व्यर्थम् । न च मनःसंयोगवति श्रोत्रेऽतिव्याप्तिवारणाय तदिति वाच्यम् । शरीरेन्द्रियसंयोगस्य ज्ञानहेतुत्वेन दोषतादवस्थ्यापत्तेरिति चेन्न । यन्मते शरीरेन्द्रियसंयोगस्य न हेतुत्वं तन्मतेनोक्तत्वादित्येके । श्रोत्रा-न्यत्वे सतीति विशेषणाच्च तत्रातिव्याप्ति रेवञ्च शरीरपदमुपरञ्जकमित्यन्ये ।

लाभः। वाय्वादीनां नीरूपत्वम्। आकाशादीनां स्पर्शशून्यत्वम्। कालादीनाममूर्त्तत्वमित्यादि।

तदेवमुक्तै र्द्रव्यत्वादिभि र्द्रव्य मितरेभ्यो विवेचितम्। नतु मध्यवृत्तिभिरन्त्यविशेषवत्त्वादिभिरव्याप्तिः। नापि

---

व्याप्तिः। नैवं तेषां कालसमवायादिति चेन्न। तस्यापि तत्र भावात्। इदानीं समवाय इत्यनुभवात्। अत्राहुः। समवायादेस्तत्र वृत्तावपि पृथिवीत्वादिभिः कालस्य न समवायरूपः सम्बन्धः। पृथिवीत्वादिसमवाययोर्हि काले वृत्तिः न तु पृथिवीत्वादिकालयोः समवायः सम्बन्धः। प्रतीतिवैलक्षण्यस्य (११२) सर्व्वसिद्धत्वात्।

न च काललक्षणे तल्लक्षणाभाववति काल एव गतत्वादतिव्याप्ति र्लक्ष्यान्यवृत्त्या ह्यतिव्याप्ति र्भवति अतएव संयोगादौ साध्य द्रव्यत्वादिना नैकान्तिक मित्यत्र विस्तरः।

साधर्म्म्यवैधर्म्म्याभ्यां षट्पदार्थज्ञाने सत्युत्तरप्रबन्धोपयोगार्थमाह। तदेवमिति। आदिपदाद् गुणवत्त्वादिपरिग्रहः। मध्यवृत्तिभिरेकदेशवृत्तिभिरित्यर्थः। अन्त्यविशेषवत्त्वादिभिरित्यत्रादिपदेन मूर्त्तत्वादिग्रहणम्। अव्याप्तेः। भागासिद्धतया सर्व्वद्रव्या-

---

(११२) प्रतीतिवैलक्षण्यस्येति। अन्यथा पृथिवीतिवत् कालः पृथिवीत्यपि धीः स्यादितिभावः। तल्लक्षणेति। काललक्षणेत्यर्थः। लक्ष्यान्येति। न च लक्ष्यान्यत्वं लक्ष्यान्योन्याभाववत्त्वम्। अन्योन्याभावस्य कालेऽस्त्वेवेति वाच्यम्। येन विशेषणताविशेषेण वर्त्तमानोऽन्योन्याभावो भेदव्यवहारं करोति तस्य तत्रा-

परस्परतोऽतिव्याप्तिः। किन्तु कियानपि विवेकः सम्भवति। न चैतावतैव कृतकृत्यत्वम्। अविवेकस्य तदवस्थत्वात्। तत्कुतो विवेक इत्यपेक्षायामाह। इहेदानीमिति। इह प्रकरणे इदानीमवसरप्राप्तौ

---

व्यावर्त्तकत्वादित्यर्थः। नापि नित्यद्रव्याणां (११३) मिथो व्यावर्त्तकमन्त्यविशेषवत्त्वम्। आकाशस्य कालादिभेदसाधने कालादावतिव्याप्तिः। विरुद्धत्वादित्याह। नापीति।

नन्वेवं तद्वचनं व्यर्थमेवेत्यत आह। किन्त्विति। अन्त्यविशेषवत्त्वमूर्त्तत्वाभ्यामिति स्वाश्रयव्यावर्त्तनादित्यर्थः। अविवेकस्येति। पृथिव्यादीनां मिथो भेदस्याप्रमितेरित्यर्थः। विवेक इति। प्रत्येकद्रव्याणामिति शेषः।

पृथिवीत्वमिति। ननु घृतादिसाधारणः पृथिवीव्यवहारो

---

भावादन्यथा घटः कालो नेतिवत् कालः कालो नेत्यपि धीः स्यादितिभावः। अत एवेति। तथाच यथा प्रतियोगिसमानाधिकरणसाध्याभाववद्वृत्तित्वेऽपि न तत्र व्यभिचारस्तथा प्रतियोगिसमानाधिकरणलक्षणाभाववति लक्षणगमनेऽपि नातिव्याप्तिरित्यर्थः।

(११३) मिथो व्यावर्त्तकमिति। परमाणव आकाशादिभ्यो भिद्यन्ते अन्त्यविशेषवत्त्वादिति नेतिभावः। अनुमेयमिति विप्रतिपन्नप्रबोधाभिप्रायम्। वस्तुतो योग्यव्यक्तिवृत्तिजाते र्व्यञ्जकग्रहे प्रत्यक्षनियम इति गन्धवत्त्वात् तत्प्रत्यक्षमेवाशङ्कितमुचितमितिभावः। कार्य्याकार्य्येत्यत्र कार्य्यपदं सम्पातायातम्।

ननु तज्जन्यत्वेन रसविशेषणाद्वोक्तदोष इत्यनुशयादाह। जलत्वेनेति। गुरुत्वेति। एवञ्च पृथिवीमात्रवृत्तित्वमपि न सिद्ध्यतीत्यपि बोध्यम्।

एकैकमित्येतावतैव चरितार्थत्वे शस्प्रत्ययोपादानं वीप्सायां भूयस्त्वज्ञापनार्थम् । पृथिवीत्वाभिसम्बन्धात् पृथिवीति । पृथिवीत्वं नाम सामान्यविशेषः । तेनाभि-

---

नानुगतः । गन्धवत्त्वात् तत्र तदनुमेयमिति चेत् । न । उपलादौ तदभावात् । अनुद्भूते च गन्धे मानाभावात् । घर्षणात् तत्रापि तत्प्रतीतिरिति चेन्न । अतोऽपि कर्षकविजातीयगन्धाननुभवात् ।

न च मधुररससमवायिकारणतावच्छेदकतया तत्सिद्धिः । तस्य जलपरमाणावपि वृत्तेः कार्य्याकार्य्यवृत्तितया कार्य्यत्वानवच्छेदकत्वात् । जलत्वेन सङ्कराच्च । जलत्वं तत्परिहारेण परमाणौ तद्रसस्य नित्यत्वात् । तच्च जलत्वपरिहारेण पृथिव्यामिति । अत-एव न गुरुत्वरूपस्पर्शसमवायिकारणतयापि तत्सिद्धिः । नापि गन्धसमवायिकारणतया । उपलादौ तदभावात् । अनुभूतगन्धे मानाभाव इत्युक्तम् । तस्य जलादेरपि सुवचत्वात् ।

अत्राहुः । पाकाद्रूपादीनां परावृत्तिरुत्पत्तिश्च दृश्यते । जलादौ नियमेन न दृश्यते । इत्याश्रयविशेषप्रयुक्तोऽयमिति परिशेषे घटत्वादीनां(११४) व्यभिचारात् । सकलघटादिव्यापकजलादि-

---

(११४) घटत्वादीनामिति । यद्यपि घटादौ पाकानभ्युपगमात् घटत्वादीनां नावच्छेदकत्वशङ्का न वा घटत्वादिसाधारण-पृथिवीत्वस्य तदवच्छेदकत्वं तथापि न्यायमतमभ्युपेत्यैवमित्येके । पिठरेऽपि पाकस्वरूपयोग्यत्वमस्त्येव । किन्तु यादृश-पाकेन रूपाद्युत्पत्तिस्तादृशपिठरं न तिष्ठत्येवेत्यन्यदेतदित्यन्ये ।

वस्तुतस्तदनुशयादेव प्रकारान्तरमाह । एवमिति । रूपवदित्यनेन स्पर्शत्वावा-

मतः सम्बन्धः समवायलक्षण स्तस्मात् । नत्वेकार्थ-संयुक्तसमवायादित्यर्थः ।

---

व्यावृत्ततद्योग्यताघटकरूपसिद्धिः । तच्च वाधकाभावाज्जातिः । एवं रूपवतोऽनुष्णाशीतस्पर्शनीलादिरूपाम्लादिरससमवायिकारण-तावच्छेदकतया स्वाभाविकधर्म्मसिद्धिः । तथा लाघवाद् य एवा-वयवा उपलाद्यारब्धवन्त स्त एव तद्गन्धमाप्यारभन्ते । तत्र च गन्ध उपलभ्यत एव ।

एवञ्च गन्धवदारम्भकत्वात् परमाणुर्गन्धवानिति गन्धवदारभ्य-त्वेनोपलाद्यपि गन्धवदेव । स चोद्भूतो नास्ति इत्यनुद्भूतः कल्प्यते । न चोद्भूतगन्धेनानुद्भूतगन्धानारम्भोऽतितप्ततैलादावनुद्भूतरूपतेजसो-द्भूतरूपवदारम्भवदविरोध इति गन्धसमवायिकारणतया तत्सिद्धिः ।

न चैवं सुखसमवायिकारणसंसार्य्यात्मनिष्ठात्मत्वव्याप्या जातिः कल्प्येत । इष्टापत्तेः । न चैवं नवद्रव्याणीति व्याघातः । ज्ञानव-त्त्वेन विभागकरणात् । सुखसमवायिकारणत्वमात्मत्वावच्छेद्य-मेव । अदृष्टाभावाच्च नेश्वरे सुखमित्यपि वदन्ति ।

---

न्तरजातिरुपलक्षिता । गुणान्तरसमानाधिकरणगुणस्यातिप्रसङ्गेन जात्यनवस्थाप-कत्वादित्याहुः ।

नीलादीति । शुक्लपटादावपि तद्योग्यत्वादितिभावः । गन्धवदारभ्यत्वेनेति । अविरुद्धगन्धवदारभ्यत्वेनेत्यर्थः । तेन विरुद्धगन्धवदारब्धे निर्गन्धे न व्यभिचारः । तस्यापि तद्योग्यत्वात् तदवच्छेदकत्वम् । अतितप्तेति । अदृष्टभेदस्य प्रयोजकत्व-मिति भावः । एतच्चाभ्युपेत्योक्तम् । वस्तुतः कालभेदेन परमाणौ प्रादुर्भूतानुद्भूत-गन्धोत्पत्तिसम्भवाच्चोक्तदोषः । ज्ञानत्वेनेत्युपलक्षणम् । ईश्वरसाधारणात्मत्वेनेत्यपि

नन्वु पृथिवीस्वरूपसिद्धौ किं लक्षणेन सिद्धे साधनवैयर्थ्यात्। तदसिद्धावाश्रयासिद्धेः। न। स्वरूपसिद्धावपि व्यवच्छेदस्य साध्यत्वात्। तथाहि

---

स्वरूपसिद्धावपीति। ननु पृथिवीरूपसिद्धिर्न किञ्चित्-पृथिवीव्यक्तिसिद्धिः। (११५) भागासिद्धिः। नापि सामस्त्येन तद्व्यक्तिसिद्धिः। तत्सिद्धौ साधनवैयर्थ्यात्। नाप्येतद्रूपोदासीन-तत्सिद्धिः। जलादिसङ्कीर्णोपस्थितावव्याप्त्यतिव्याप्त्यापत्तेः। मैवम्। पृथिवीत्वेन रूपेण समस्ततदुपस्थितावव्याप्त्यतिव्याप्तिशङ्कानवका-शात्। पृथिवीपदं समनियतगन्धवत्त्वोपलक्षकम्। पृथिवीत्वं जातिः लिङ्गम्। अन्यथा नियतसामानाधिकरण्यरूपव्याप्तिग्रह-दशायामेव साध्यसिद्धेः किमनुमेयं स्यात्।

---

द्रष्टव्यम्। न चैतन्मते तदनभ्युपगमः। आत्मत्वव्याप्यजाताविष्टापत्तिकरणेन तदभ्युपगमान्नयनानीत्यस्य स्वरूपयोग्यस्य फलोपधाननियमादीश्वरे कदाचित् सुखोत्पत्ति रित्यस्वरस सूचयन्नाह वदन्तीति।

(११५) भागेति। यत्किञ्चित् पृथिवीज्ञानेऽपि भागाज्ञानादित्यर्थः। साधन-वैयर्थ्यादिति। स्वरूपभेदः साध्य इत्यभिप्रायेणेदम्। एतदिति। यत्किञ्चित् सामस्त्येत्यर्थः। तत्सिद्धिरपि जलादिभिन्नत्वेन तत्तादात्म्येन वा। आद्ये तत्-सिद्धाविति। अन्त्ये जलादीति। तत्रापि तत्तादात्म्येनोपस्थितिपक्षे सर्व्वत्र यदि पृथिवीत्वं न ज्ञातं तदा भागासिद्धिरव्याप्तिः। यदि च सर्व्वत्र ज्ञातं तदा पक्षवत्त्वतादात्म्येन ज्ञाते जलेऽपि पृथिवीत्वं ज्ञातं जलभेदश्च नास्तीत्यतिव्याप्ति-र्व्यभिचारज्ञानमतो नानुमितिरित्यर्थः।

न चाजलादिभिन्नत्वेन न वा तत्तादात्म्येन तदुपस्थितिः। किन्तु पृथिवीत्वेन रूपेण सकलतदुपस्थितावितरभेदसाधने न कोपि दोषः। इत्याशयेनाह। मैव-

पृथिव्यबादिभ्यो भिद्यते पृथिवीत्वात् यत् पुनरितरेभ्यो न भिद्यते नासौ पृथिवी यथाबादि। नचेयं पृथिवी। तस्मादितरेभ्यो भिद्यते। तथाप्यप्रसिद्ध-

---

ननु भेदः साध्यः स च न स्वरूपम्। अधिकरणप्रतियोगिनोः प्रागेव प्रतीतेः। नापि वैधर्म्म्यम्। तद्धि पृथिवीत्वादिकं तच्च सिद्धमेव।

न च जलादिनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वेन तत्र सिद्धं जलादौ पृथिवीत्वात्यन्ताभावग्रहदशायां पृथिवीत्वेऽपि तत्प्रतियोगित्वग्रहात्। नाप्यन्योन्याभावः। तस्य जलादिप्रतियोगिकस्यैवाभावप्रतियोगिनोऽपि सिषाधयिषितत्वेन तत्प्रतियोगिनोऽधिकरणभिन्नस्य तस्यानभ्युपगमात्। शब्दसाम्ये चानुमानाप्रवृत्तेः।

---

मिति। न ह्रीति। पृथिवीत्वेनोपस्थिते पक्षे न भागासिद्धिशङ्का न वा जले पृथिवीत्वं ज्ञातं न व्यभिचारज्ञानं स्यात्। भ्रान्तस्य कस्यचित् तथा भाने न दोष इति भावः।

पृथिवीपदमिति। न चैवं विरुद्धगन्धारब्धनिर्गन्धस्य पक्षवहिर्भावापत्तिः। गन्धवत्त्वेन तद्‌योग्यतोपलक्षणात्। अन्यथेति। एतच्च व्यतिरेकसहचारेणान्वयव्याप्तिग्रहपक्षे। अन्यथा तत्सामानाधिकरण्याभानात्। अधिकरणेति। यद्यपि तत्सिद्धावपि स्वरूपभिन्नत्वेनासिद्धिरित्यनुमानवैयर्थ्यं, अन्यथा अभावात् स्वरूपस्य भेदत्वं भेदप्रतीतिजनकत्वं तच्चाभावान्तरासम्भवे कल्पते। नवेह ह्यतत्स्वरूपस्य भेदत्वस्य साधनं बाधितम्। नत्वभावभेदसाधनमपीति भावः। इत्याहुः।

नन्वेवमथ भाववैधर्म्म्यं न सिद्धम्। तन्निष्ठाभावान्तराभ्युपगमादिति चेन्न। भावमात्रभेदसिद्ध्यर्थं तथा शङ्कितत्वादित्याहुः।

विशेषणः पक्षः। इतरव्यवच्छेदस्य क्वचिदप्यप्रसिद्धेः। सिद्धौ वा साधनवैयर्थ्यात् इतरव्यवच्छेदस्य घटादावेव प्रत्यक्षसिद्धत्वात्। किन्त्वा परमाणौ राच भूगोलकं पृथिवीत्वनिमित्ताक्रान्ते व्याप्त्यावच्छेदभेदव्यावृत्त्या व्यावृत्ति र्न सिद्धेति साध्यत इति न दोषः।

---

नैवम्। इतरभावान्योन्याभावस्य साध्यत्वात्। न चाभावादविवेकतादवस्थ्यम्। अभावात् स्वरूपभेदस्यानुमानान्तरेण साध्यत्वात्। तथापीति। विशेषणं साध्यम्। साध्याप्रसिद्धौ न तद्व्यतिरेकज्ञानम्। न वा पक्षत्वम्। साध्याप्रसिद्धौ तत्सन्देहादेरभावात्। न वा साध्यविशेषणिका पक्षविशेष्यिकानुमितिः। विशेषणज्ञानं विना विशिष्टज्ञानाभावादिति भावः। इतरेति। ननु घटे प्रत्यक्षप्रतियोगिकाभावप्रमायामपि अयोग्यप्रतियोगिकस्य तस्याप्रमितिः। स्तम्भः पिशाचो न भवतीति प्रतीतेरयोग्यान्योन्याभावो योग्य एवेति चेत्। न। ततः करणमात्रसिद्धावपि प्रत्यक्षतत्कारणासिद्धेः। उभयसिद्धायोग्यतत्संसर्गाभावदृष्टान्तेन

---

अनुमानान्तरेणेति। यद्यपि पृथिवीतरत्वावच्छिन्नसामान्यान्योन्याभावस्यैकस्य साधनेनानुमानान्तरापेक्षा नहि भावसाधारणप्रतियोगितावच्छेदकसत्त्वेऽपि नाभावस्याभावान्तराभ्युपगम। तथा सति मेयत्वस्य कार्य्यवत्यव्याप्यत्वापत्तेः। कार्य्यत्वध्वंसवृत्तित्वेन मेयत्वसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितानवच्छेदकत्वादभावस्वरूपभेदकत्वे सति जलाद्यन्योन्याभावत्वस्य विशिष्टस्य साधनेऽपि न तदपेक्षा। तथानुमानप्रकाशोक्तमनुसन्धेयम्। विस्तरभयान्नात्र बहु लिखितम्।

अथ किमेतल्लक्षणमित्युच्यते। केवलव्यतिरेकिहेतुविशेषो लक्षणम्। तथाचाचार्य्याः। समानासमानजातीयव्यवच्छेदो लक्षणार्थ इति। एवं तर्हि

---

तदन्योन्याभावस्याप्ययोग्यत्वानुमानात्। अत्राहुः। अधिकरणे प्रतियोगिसत्त्वविरोधिन्या अनुपलब्धेरेवाभावग्राहकत्वात्। अस्ति चेहापि घटस्य चतुर्द्दशात्मकतया सत्त्वं तदीयतथानुपलब्धिविरोधि।

ननु घटस्यापि पक्षत्वादंशतः सिद्धसाधनमित्यत आह। किन्त्विति। पक्षत्वावच्छेदकनानात्व एव तस्य दोषत्वादतएवानित्ये वाङ्मनसे इत्यत्रानित्या वागिति बुद्धेरुद्देश्याया: सिद्धत्वेनांशतः सिद्धसाधनम्। अत्र तु सर्व्वा पृथिवी इतरभिन्नेत्युद्देश्यप्रतीतेरभाव इत्यर्थः। तथापि घटः कथं पक्षः साध्यनिश्चयेन तत्सन्देहसिषाधयिषयोरभावादिति चेन्न। सर्व्वा पृथिवी इतरभिन्ना न वेति संशयस्य तत्प्रकारसिषाधयिषायाश्च घटविषयत्वात्। घटत्वेन विशेषदर्शनं सिद्धिर्वा तेन रूपेण संशयसिषाधयिषे न भवतः पृथिवीत्वेन भवत इति भावः।

ननु लक्षणमुपक्रम्यानुमाने पर्य्यवसानमयुक्तमित्यत आह। अथेति। केवलेति। इतरभेदसाधकत्वं व्यवहारसाधकत्वं वा विशेषः। पक्षसम्बन्धतयैव प्रसिद्धं साध्यमनुमीयत इति मन्वानः

---

चतुर्द्दशेति। अभावपदाय चतुर्द्दशत्वं बोध्यम्। पृथिवीत्वेनेति। अन्यथा धूमवान् वह्निमानिति सामान्यलक्षणया वह्निनिश्चयात् पर्व्वतेऽग्निसंशयो न स्यादिति भावः। एतच्च संशय द्विघटितं बोध्यम्।

| | | |
|---|---|---|
| •Markandeya Purana, Fasc. 5-7 @ /10/ each ... ... | Rs. 1 | 14 |
| *Mimāṁsā Darçana, Fasc. 10-19 @ /10/ each ... ... | 6 | 4 |
| *Nyāyavārtika, Fasc. 1-6 @ /10/ each ... .. ... | 3 | 12 |
| •Nirukta, Vol. IV. fasc. 1-8 @ /10/ each ... ... ... | 5 | 0 |
| *Nitisara, Fasc. 3-5 @ /10/ each ... ... ... | 1 | 14 |
| Nityācārapaddhatiḥ, Fasc. 1--7 @ /10/ each ... ... ... | 4 | 6 |
| Nityācārapradīpaḥ Vol. I. Fasc. 1--8 ; Vol. II, Fasc. 1-3. @ /10/ each ... | 6 | 14 |
| Nyayabinduṭīkā, Fasc. 1 @ /10/ each .. ... ... | 0 | 10 |
| *Nyāya Kusumāñjali Prakaraṇa Vol. I, Fasc. 2--6 ; Vol. II, Fasc. 1--3 @ /10/ each ... ... ... ... ... | 5 | 0 |
| Nyayasarah ... ... ... ... ... | 2 | 0 |
| Padumawati, Fasc. 1--5 @ 2/ ... ... ... ... | 10 | 0 |
| *Pariçiṣṭa Parvan, Fasc. 3--5 @ /10/ each ... ... ... | 1 | 14 |
| Prākrita-Paingalam, Fasc. 1--7 @ /10/ each ... ... ... | 4 | 6 |
| Prithivirāj Rāsa. Part II, Fasc. 1--5 @ /10/ each ... ... ... | 3 | 2 |
| Ditto (English) Part II, Fasc. 1 @ 1/- ... ... ... | 1 | 0 |
| Prākṛta Lakṣaṇam Fasc. 1 @ 1/8/ each ... ... ... ... | 1 | 8 |
| Parāçara Smṛti, Vol. I, Fasc. 1--8 ; Vol. II, Fasc. 1--6 ; Vol. III, Fasc. 1--6 @ /10/ each ... ... ... ... ... | 12 | 8 |
| Parāçara, Institutes of (English) @ 1/- each ... ... ... | 1 | 0 |
| Pariksamukha Sutram ... ... ... ... ... | 1 | 0 |
| Prabandhacintāmaṇi (English) Fasc. 1--3 @ 1/4/ each ... ... | 3 | 12 |
| Rasarnavam, Fasc. 1-3 ... ... ... ... | 3 | 12 |
| Saddarsana-Samuccaya, Fasc. 1-2 @ /10/ each ... ... ... | 1 | 4 |
| Samaraieca Kaha Fasc. 1-3, @ /10/ ... ... ... ... | 1 | 14 |
| Sāṅkhya Sūtra Vṛtti, Fasc. 1-4 @ /10/ each ... ... ... | 2 | 8 |
| Ditto (English) Fasc. 1-3 @ 1/- each ... ... | 3 | 0 |
| •Sankara Vijaya, Fasc. 2-3 @ /10/ each ... ... | 1 | 4 |
| Six Buddhist Nyaya Tracts. ... ... ... ... | 0 | 10 |
| Srāddha Kriyā Kaumudī, Fasc. 1-6 @ /10/ each ... ... ... | 3 | 12 |
| Sragdharā Stotra ( Sanskrit and Tibetan ) ... ... ... | 2 | 0 |
| Suçruta Saṁhitā, (Eng.) Fasc. 1 @ 1/- each ... ... ... | 1 | 0 |
| Suddhikaumudī, Fasc. 1-4 @ /10/ each ... ... ... ... | 2 | 8 |
| Sundaranandam Kavyam ... ... ... ... ... | 1 | 0 |
| Suryya Siddhanta fasc. 1 ... ... ... ... ... | 1 | 4 |
| Syainika Sastra ... ... ... ... ... ... | 1 | 0 |
| *Taittreya Brahmana, Fasc. 11-25 @ /10/ each ... ... ... | 9 | 6 |
| „ Pratisakhya, Fasc. 1-3 @ /10/ each ... ... ... | 1 | 4 |
| *Taitterīya Saṁhitā, Fasc. 27-45 @ /10/ each ... ... ... | 11 | 14 |
| Tāṇḍya Brāhmaṇa, Fasc. 10-19 @ /10/ each ... ... ... | 6 | 14 |
| Tantra Vārteka (English) Fasc. 1-8 @ 1/4/ each .. ... ... | 10 | 0 |
| *Tattva Cintāmaṇi, Vol. I, Fasc. 1-9, Vol. II, Fasc. 1-10, Vol. III, Fasc. 1-2, Vol. IV. Fasc. 1. Vol. V, Fasc. 1--5, Part IV. Vol. II, Fasc. 1-12 @ /10/ each | 24 | 6 |
| Tattva Cintamani Didhiti Vivriti, Fasc, 1, @ /10/ each ... .. | 0 | 0 |
| Ditto Prakas, fasc. 1-2, @ /10/ each ... ... | 1 | 4 |
| Tattvārthadhigama Sutram, Fasc. 1-3 @ /10/ each ... ... ... | 1 | 14 |
| Tirthacintamoni, fasc, 1, @ /10/ each ... ... ... | 0 | 10 |
| Trikāṇḍa-Maṇḍanam, Fasc. 1-3 @ /10/ each ... ... ... | 1 | 14 |
| Tul'si Satsai, Fasc. 1--5 @ /10/ each ... ... ... ... | 3 | 2 |
| *Upamita-bhava-prapañca-kathā, Fasc. 1-2, 5-13 @ /10/ each ... ... | 6 | 14 |
| Uvāsagadasāo, (Text and English) Fasc. 1--6 @ 1/- each ... ... | 6 | 0 |
| Vallāla Carita, Fasc 1 @ /10/ ... ... ... ... | 0 | 10 |
| Varṣa Kriyā Kaumudī, Fasc 1--6 @ /10/ each ... ... ... | 3 | 12 |
| *Vāyu Purāṇa, Vol. I, Fasc. 3--6 ; Vol. II, Fasc. 1--7, @ /10/ each ... | 6 | 14 |
| Vidhāna Pārijata, Fasc. 1-8 Vol- II. Fasc. I @ /10/ each ... ... | 5 | 10 |
| Ditto Vol. II, Fasc. 2-4 @ 1/4/ ... ... ... | 3 | 12 |
| Vivādaratnākara, Fasc. 1--7 @ /10/ each ... ... ... | 4 | 6 |
| Vṛhat Svayambhū Purāṇa, Fasc. 1--6 @ /10/ each ... ... ... | 3 | 12 |
| *Yoga Aphorisms of Patanjali, Fasc. 3-5 @ /10/ each ... ... | 1 | 14 |
| Yogasāstra of Hemchandra Vol. I. Fasc. 1-3 ... ... | 3 | 12 |

*Tibetan Series.*

| | | |
|---|---|---|
| Baudhyastotrasangraha, Vol. I ( Tib. & Sans. ) ... ... ... | 2 | 0 |
| A Lower Ladakhi version of Kesarsaga, Fasc. 1--4 @ 1/- each ... ... | 4 | 0 |
| Nyayabindu of Dharmakirti. Fasc. 1 ... ... ... ... | 1 | 0 |
| Pag-Sam S'hi Ṭiṅ, Fasc. 1--4 @ 1/- each ... ... ... | 4 | 0 |
| Rtogs brjod dpag ḱkhri S'iṅ ( Tib. & Sans. Avadāna Kalpala Vol. I, Fasc. 1--8 ; Vol. II. Fasc. 1--7 @ 1/- each ... ... | 15 | 0 |
| Sher-Phyin, Vol. I, Fasc. 1-5 ; Vol. II, Fasc. 1-3 ; Vol. III, Fasc 1-6, @ 1/ each | 14 | 6 |

*Arabic and Persian Series.*

| | | |
|---|---|---|
| *Ālamgīrnāmah, with Index. (Text) Fasc. 1--13 @ /10/ each ... ... | 8 | 2 |
| Al-Muqaddasi (English) Vol. I. Fasc. 1--4 @ 1/- each ... ... | 4 | 0 |
| Akbarnāmah, with Index, Fasc. 1--37 @ 1/8/ each... ... ... | 55 | 8 |

*The other Fasciculi of these works are out of stock and complete copies canno be supplied.

| | | |
|---|---|---|
| Āīn-i-Akbari, Fasc. 1-22 @ 1/8/ each ... | 33 | 0 |
| Ditto (English) Vol. I, Fasc. 1--7, Vol. II, Fasc. 1--5, Vol. III, ... | 36 | 0 |
| Ditto (English) Vol. I, Fasc. 1--8 ; Vol. II, Fasc. 1-7 Vol 3 @ 1/4/ each | 20 | 0 |
| Arabic Bibliography, by Dr. A. Sprenger, @ /10/ ... | 0 | 10 |
| *Bādshāhnāmah, with Index, Fasc. 1--19 @ /10/ each ... | 11 | 14 |
| Conquest of Syria, Fasc. 1-9 @ /10/ each ... | Rs. 5 | 10 |
| Catalogue of Arabic Books and Manuscripts, 1-2 @ 1/- each ... | 2 | 0 |
| Catalogue of the Persian Books and Manuscripts in the Library of the Asiatic Society of Bengal. Fasc. 1--3 @ 1/ each ... | 3 | 0 |
| Dictionary of Arabic Technical Terms, and Appendix, Fasc. 1-21 @ 1/8/ each | 31 | 8 |
| Farhang-i-Rashīdi, Fasc. 1-14 @ 1/8/ each ... | 21 | 0 |
| Fihrist-i-Ṭūsī, or, Ṭūsy's list of Shy'ah Books, Fasc. 1--4 @ 1/- each ... | 4 | 0 |
| Futūḥ-ush-Shām of Wāqidī, Fasc. 1--9 @ /10/ each ... | 5 | 10 |
| Ditto of Āzādi, Fasc. 1--4 @ /10/ each ... | 2 | 8 |
| History of Gujarat ... | 1 | 0 |
| Haft Asmān, History of the Persian Masnawi, Fasc. 1 @ /12/ each ... | 0 | 12 |
| Hisātory of the Caliphs, (English) Fasc. 1--6 @ 1/4/ each ... | 7 | 8 |
| Iqālnamah-i-Jahāngīrī, Fasc. 1--3 @ /10/ each ... | 1 | 14 |
| Isābah, with Supplement, 51 Fasc. @ 1/- each ... | 51 | 0 |
| Ma'ṣāir-i- Ālamgīrī, Fasc. 1--6 @ /10/ each ... | 3 | 12 |
| Maa'āsir-ul-Umarā, Vol. I, Fasc. 1--9, Vol. II, Fasc. 1--9 ; Vol. III, 1-10 ; Index to Vol. I, Fasc. 10-11 ; Index to Vol. II, Fasc. 10-12 ; Index to Vol. III, Fasc. 11-12 @ /1/ each ... | 35 | 0 |
| Maghāzi of Wāqidī, Fasc. 1--5 @ /10/ each ... | 3 | 2 |
| Marhamu 'L-Ilali 'L-Mu'Dila ... | 1 | 0 |
| Muntakhabu-t-Tawārikh, Fasc. 1--15 @ /10/ each ... | 9 | 6 |
| Ditto (English) Vol. I, Fasc. 1--7 ; Vol. II, Fasc. 1--5 and 3 Indexes ; Vol III. Fasc. 1 @ 1/ each ... | 16 | 0 |
| Muntakhabu-l-Lubāb, Fasc. 1- 19 @ /10/ each ... | 11 | 14 |
| Ditto Part 3, Fasc. 1 ... | 1 | 0 |
| Nukhbatu-l-Fikr, Fasc. 1 @ /10/ ... | 0 | 10 |
| Niẓāmi's Khiradnāmah-i-Iskandari, Fasc. 1--2 @ /12/ each ... | 1 | 8 |
| Qawaninu 's-Sayyad of Khuda Yar Khan 'Abbasi, edited in the original Persian with English notes by Lieut. Col. D. C. Phillott ... | 5 | 0 |
| Riyāzu-s-Salātīn, Fasc. 1--5 @ /10/ each ... | 3 | 2 |
| Ditto (English) Fasc. 1--5 @ 1/ ... | 5 | 0 |
| Tadhkira-i-khushnavīsān ... | 1 | 0 |
| Tabaquāt-i-Nāṣiri, (English), Fasc. 1-14 @ 1/- each ... | 14 | 0 |
| Ditto Index ... | 1 | 0 |
| Tārīkh-i-Fīrūz Shāhi of Ziyāu-d-dīn Barni Fasc. 1--7 @ /10/ each ... | 4 | 6 |
| Tārīkh-i-Fīrūzshāhi, of Shams-i-Sirāi Aif. Fasc. 1--6 @ /10/ each ... | 3 | 12 |
| Ten Ancient Arabic Poems, Fasc. 1--2 @ 1/8/ each ... | 3 | 0 |
| Tuzuk-i-Jahāngīrī, (Eng) Fasc. 1 @ 1/ ... | 1 | 0 |
| Wis-o-Rāmīn, Fasc. 1--5 @ /10/ each ... | 3 | 2 |
| Zafarnāmah, Vol. I, Fasc. 1--9, Vol. II, Fasc. 1--8 @ /10/ each ... | 10 | 10 |

---

## ASIATIC SOCIETY'S PUBLICATIONS.

1. Asiatic Researches. Vols. XIX and XX @ 10/ each ... ... 20
2. Proceedings of the Asiatic Society from 1870 to 1904 @ /8/ per No
3. Journal of the Asiatic Society for 1870 (8), 1871 (7), 1872 (8), 1873 (8), 1874 (8), 1875 (7), 1876 (7), 1877 (8), 1878 (8), 1879 (7), 1880 (8), 1881 (7), 1882 (6), 1883 (5), 1884 (6), 1885 (6), 1886 (8), 1887 (7), 1888 (7), 1889 (10), 1890 (11), 1891 (7), 1892 (8), 1893 (11), 1894 (8), 1895 (7), 1896 (8), 1897 (8), 1898 (8), 1899 (8), 1900 (7), 1901 (7), 1902 (9), 1903 (8), 1904 (16), @ 1/8 per No. to Members and @ 2/ per No. to Non-Members

*N. B.—The figures enclosed in brakets give the number of Nos. in each Volume.*

4. Journal and Proceedings, N. S., 1905, to date, (Nos. 1-4 of 1905 are out of stock), @ 1-8 per No. to Members and Rs. 2 per No. to Non-Members.
5. Memoirs, 1905, to date. Price varies from number to number. Discount of 25% to Members
6. Centenary Review of the Researches of the Society from 1784-1883 ... 3 0
7. Catalogue of the Library of the Asiatic Society, Bengal, 1910, ... 8 0
8. Moore and Hewitson's Descriptions of New Indian Lepidoptera, Parts I--III, with 8 coloured Plates, 4to. @ 6/ each ... ... 18 0
9. Kaçmiraçabdāmṛta, Parts I & II @ 1/8/ ... ... ... 3 0
10. Persian Translation of Haji Baba of Ispahan, by Haji Shaikh Ahmad-i-Kirmasi, and edited with notes by Major D. C. Phillott. ... 10 0

---

Notices of Sanskrit Manuscripts, Fasc. 1-34 @ 1/ each ... ... 34 0
Nepalese Buddhist Sanskrit Literature, by Dr. R. L. Mitra ... 5 0

*N.B.*—All Cheques, Money Orders, &c. must be made payable to the "Treasurer Asiatic Society," only.

**Books are supplied by V. P. P.** 23-12-11